मृगनयनी में कला और कृतित्व

(श्री वृन्दावनलाल जी वर्मा के पुरस्कृत, अत्यधिक
। विभिन्न विश्वविद्यालयो द्वारा
पन्यास की कला और कृतित्व)

लेखक:—

डा० सत्येन्द्र, एम० ए०, पी० एच० डी०



अनुक्रमणिका





यनी : कला और कृतित्व

अध्याय १

वर्मा जी के उपन्यास : प्रथम चरण

—१—

ाबू वृन्दावनलाल वर्मा ने लिखा है 'अब जो पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी (१) गढकुडार' १९२७, (२) 'सगम' १९२७. (३) 'लगन' ४) 'प्रत्यागत' १९२९, (५) 'प्रेम की भेंट' १९३०, (६) ग्न' १९२६, (७) 'विराटा की पद्मिनी' १९३३, (८) 'धीरे-ाटक) १९२७ । मेरे नाम से एक उपन्यास 'कोतवाल की करामात' उनमे मेरी लिखी एक लकीर भी नही । एक मित्र ने उसे लिखा ।'

× × ×

र उन्होने लिखा

ी ही नदिया-नाले-या नदी-नाले-झीले और बुन्देलखड के पर्वत-वेष्टित मल खेत मेरी प्रेरणा के प्रधान कारण है । इसलिये मुझको His Romance पसन्द है । अन्य कारण जानकर क्या करियेगा ?'

—२—

मे हिन्दी का सौन्दर्य (Refinement) काल आरभ होता है । ा की ओर प्रवृत्ति इस युग मे मिलती है, वहां विविध समृद्धि की प्रवृत्ति ता की भावना सुन्दर की चाह बनने लगती है, और विविध समृद्धि नुभूति और अध्ययन से पूर्व, कल्पना को जागृत करती है । कल्पना

। विषम प्रवाह समता की ओर, राजमहलों को छोड़ आज के धनिकों के भवनों था आज के बाजारों की ओर चल पड़ा । तो इन उपन्यासों में कहीं कहीं रोमान्स ाकता मिलता है । इसके ओट में ही, उनका तो नहीं पर इस युग के उपन्यासों ; आधारों का परिष्कार होने लगा । किन्तु इन शक्तियों का यह संपूर्ण मौलिक प्रयोग भी साहित्य-बुद्धि को संतुष्ट नहीं कर सका । इस प्रकार यहां जन-रुचि । अत्यन्त अन्तर विद्यमान था । प्रेमचन्द ने यही क्रान्ति उपस्थित की । उनकी क्रान्ति १९२०-२५ तक साहित्य की प्रेरणाओं और प्रवृत्तियों को नई दिशा में ाकृष्ट और परिपक्व कर पायी । उपन्यासों में उनके द्वारा भी सौन्दर्य विकसित आ । यही बाबू वृन्दावनलाल वर्मा ने अपने उपन्यास देने आरम्भ किये । उनमें रोमांटिक कल्पना-समृद्धि और सौन्दर्य का सम्मेलन हुआ ।

हिन्दी में वृन्दावनलाल ही वास्तविक रोमांस-साहित्य देने में समर्थ हुए हैं । और वह वास्तविक रोमांस है । किशोरीलाल गोस्वामी के रसिक रोमान्स में ताना बाना मुगलिया का है किन्तु आत्मा में लंदन-रहस्य की झलक है । वह भी अधिकांश कल्पना-विलास का फल है । इस कोटि के रोमांसप्रिय लेखकों में रोमान्स का स्वरूप विकृत हो जाता है वह विलास-आकांक्षा से आकुल प्रेमियों की साहसिक प्रवृत्ति हो उठती है, प्रेम कामुकता का स्थान ग्रहण कर लेता है । निर्बल-त्राण (Chivalry) तथा पुरुषार्थ गुप्त षडयन्त्रों में परिणत हो जाते हैं । केवल ऐसे रोमान्स की रचनाएं साहित्यिक गरिमा का अधिकार नहीं पातीं । साहित्यिक रोमांस इनसे भिन्न स्वभाव का होता है । इस रोमांस के लेखक प्राचीन ऐतिहासिक विभूतियों को प्रेम के लिए सजीव करते हैं और अतीत के महिमामय चित्र उपस्थित कर उसके गौरव के प्रति रचना को श्रद्धाभिभूत कर देते हैं। वर्माजी से हिन्दी का रोमांस यह धरातल नहीं पा सका था ।

—३—

भारत में राष्ट्रीयता का अपूर्व जागरण हो चुका था, उसमें प्रदत्त गति भी या रही हुई थी—स्वच्छन्द और स्वतन्त्र वातावरण की चाह, बन्धन को तोड़ फोड़ डालने की उमंग, समाज में मूढ़ग्राहों के प्रति असन्तोष, साम्प्रदायिक एकता फिर विरोध—ये सभी इस जागरण की प्रबल ऐंठनों के रूप में प्रकट हो रहे थे । वैज्ञानिक

विकास-सिद्धान्त का, जीवन-सघर्ष (struggle for existence) सबल की सत्ता (survival of the fittest) वाला पहलू भी मस्तिष्क एक उत्क्रान्ति मचाये हुए था। इस क्रान्ति का प्रभाव साहित्य पर कभी विना नही रह सकता। इस उद्वेलन के काल मे क्या यह सभव था कि ले की शक्ति केवल कल्पनाविलास में लगी रहती, और वह मनुष्य के रक्त प्रेम और रसिकता की ही गर्मी भरती रहती या इसी प्रेम या रसिकता के लि किसी इतिहास के मृत पात्रो का उद्धार करने में सलग्न हो जाती। इस में रोमान्टिसिज्म की Emotionality या Sentimentali भावोग्रता अथवा भावविकलता क्या केवल प्रेम की या रसिकता की वे पर सर्वत समर्पित कर दी जा सकती थी? भावुक रोमास को पलायन में ज दिव्यता और चिर आनन्द की अनुभूति होती है, वहाँ भारत का यह युग अनेक घट तरगो से उसे श्रेयस्कर का रूप नही धारण करने देगा, उसमें तलखाहट आ जायगी। फलत केवल रसिकता, या केवल प्रेम भारतीय रोमास का पूर्णाध नही बना।

रोमास में कला आश्चर्यानुप्राणित उद्वेगमय घटनाओ के कथानक माध्यम को ग्रहण करती है, और उसमें कथा कथा के लिए की प्रवृत्ति प्रधान ह जाती है, पुन यह कला मानसिक-विलास (mental luxury) मात्र रह जात है, पर भारत का आन्दोलित और उद्वेलित जन इन वहानो से वचने के लिए प्रस्तु होकर भी वच नही सका, और कला में ही परिपूर्ण और सन्तुष्ट होने वाली विलास कला के पात्र में लेखक को अपने अनुभव के प्रतिविव ढालने पड गये है। इस क्रा की रोमास को किन्ही अन्य अभिप्रायो के लिए अपने ... न बनना पडा है

प्रवृत्ति (Aristrocracy) आभिजात्यवर्ग की, अपनी एकायनी monotonous समृद्धि-भोग-विभोग्ता से ऊबने पर विषम जीवन की चाह पर निर्भर करती है, अत यथार्थत आभिजात्य होने पर भी मूलत प्रव्रज्य है। पूँजीवादी मनोवृत्ति और आन के मूनो पर टिकी हुई भी मुख्यत पुरुषार्थी है। सामतवादिनी यह इसलिए नही है कि यह अधिकार और आधिपत्य के गर्व से जर्जर विकारो को आश्रय नही देती, (fendal lords सामत) जितने अनाचार के प्रतीक है, उतनी ही यह प्रवृत्ति नही। यह शौर्योदार्य (Chivalry) के भाव से, क्षत्रिय के अपने परोपयोगी पुरुषार्थ के भावसे उद्भासित है। भारत मे रोमास का यह भाव व्यक्तिगत मात्र नही हो सका मुसलमानी शासन ने और वर्णव्यवस्था ने भी, क्षत्रियत्व को सार्वजनिक गुण नही बनने दिया, इसे जाति मे सबद्ध कर दिया, और जाति के बहाने ही व्यक्ति में यह रोमाटिक शौर्य आया। व्यक्ति के उपार्जन की अपेक्षा यह जाति के उत्तराधिकार की भाँति है। यही कारण है कि वृन्दावनलाल वर्मा ने बुन्देलखड को चुना, यही कारण है कि वे यहाँ रोमास पासके। बुन्देलो में जातिगत शौर्य विद्यमान है।

—४—

बाब वृन्दावनलाल वर्मा को Historical Romance पसद है। अपने सात उपन्यासो मे उन्होंने दो बडे उपन्यासो का आधार इतिहास ही से लिया। वे है 'गढकुडार' तथा 'विराटा की पद्मिनी'। शेष पाँच उपन्यास भी किसी न किसी बीती हुई घटना पर निर्भर करते हैं-केवल कल्पना से उनके कथानक तैयार नही किये गये। ये सभी उपन्यास बुन्देलखंड से ही सबंध रखने वाले है। 'प्रत्यागत' को छोड़कर अन्य किसी उपन्यास में हमें बुन्देलखंड की सीमा से बाहर नही जाना पडता। 'प्रत्यागत' मे अवश्य उसका एक पात्र बम्बई और मलाबार में धक्के खाने चला गया है।

अत वर्मा जी को बुन्देलखड का उपन्यासकार कहा जा सकता है, या और भी ठीक-ठीक शब्दो से यों कहा जा सकता है कि वर्मा जी बुन्देलखंडी उपन्यासो के लेखक हैं। यह विशेषत वर्मा जी की विशेषता है। यद्यपि प्रेमचन्द जी भी प्राय. अपने उपन्यासो में 'काशी' के आसपास ही रहे है,

उन्हे किसी स्थल-विशेष से सम्बद्ध नही बताया जासकता,जैसे वर्माजी को। में अपनी कहानी और पात्रो के अतिरिक्त बुन्देलखड प्रान्त भी उद्भासित हो उठा है। स्पष्ट यह विदित होने लगा है कि वे कहानी ही के साथ कह रहे है। इस सबन्ध में बुन्देलखड का उनका अध्ययन बहुत विदित होता है। पूर्ण ही नही वह विस्तृत और विशद है। अत उनके न्यासो में बुन्देलखडीय कहानी, बुन्देलखडीय पात्रो और बुन्देलखड प्रान्त त्रिवेणी है।

बुन्देलखड प्रान्त प्राकृतिक श्री में लहलहा रहा है। स्वर्गीय मुन्शी अज ा जी ने लिखा है—

पूर्व ओर है टोस पश्चिमाञ्चल में चम्बल।
उस पर केन घसान वेतवा सिंध बही है।
विकट विन्ध्य की शैल-श्रेणियाँ फैल रही है।
विविध सुदृश्यावली अटल आनन्द भूमि है।
प्रकृतिच्छटा बुन्देलखण्ड स्वच्छन्द भूमि है।
अडे उच्च गिरि और सघन वन लहराते है।
खडे खेत निज छटा छबीली छहराते है।
गरुण, तेंदुए, रीछ, बाघ स्वच्छन्द विचरते।
शूकर, साँवर, रोझ, हिरन, चीतल है चरते।
आखेटक के लिये सदा जो भेट भूमि है।
अति उद्दण्ड बुन्देलखड आखेट भूमि है।

इस भूमि से वृन्दावनलाल वर्मा को प्रेम है, और उस प्रेम का का भूमि की यही रोमाटिक श्री है, जिसमे झरने, पर्वत, नदियाँ, नाले, वन, [illegible] भरे पडे है। इसी रोमाटिक प्राकृतिक श्री का चित्र सजीव और पूर्ण सर्वत्र उपन्यासो मे गुँथा हुआ मिलेगा। वर्माजी ने बुन्देलखड में ज और इस श्री को देखा, वहाँ की कहानियाँ सुनी, कहानियाँ सुनकर उन का आये हुए और बुन्देलखड की प्राकृतिक श्री में दूर-दूर विचर हुए व्यस्त प्रा [illegible] एक टीस उठा और वे उनकी सुन

नियाँ, इतिहास के अध्ययन से कहीं-कहीं परिपुष्ट होकर उपन्यास-रूप में परिणत हो गयीं। जो ऐतिहासिक नहीं है वे भी बुन्देलखंड की कहानियाँ हैं, लेखक ने अपने मन से गढ़ी, और वे सच्ची हैं। उनके पात्र भी कल्पना के पात्र नहीं प्रत्येक उपन्यास में जो परिचय लेखक ने दिया है उसमें यह सूचना मिल जाती है कि कितने ही पात्र तो उनके जाने पहिचाने हैं, उनमें से कोई जीवित है, कोई इस संसार को छोड़ गया है। बहुत से पात्रों के नाम भी लेखक ने दे दिये हैं गढ़कुण्डार का अर्जुनकुमार, 'लगन' उपन्यास का चरित्र-नायक देवसिंह ऐसे ही लेखक के जाने सुने पात्र हैं। इस प्रकार वर्माजी के उपन्यास में बुन्देलखंड का जीता-जागता चित्र है। वर्माजी के इन बुन्देलखंडीय उपन्यासों को हार्डी के वेसेक्स उपन्यास जैसा नहीं कहा जा सकता। हार्डी का वेसेक्स प्रान्त कल्पित है, उसके पात्र और कहानियाँ भी वैसी ही हैं। उसके वेसेक्स प्रान्त के सम्बन्ध में इतनी यथार्थता है कि उसने अपने डोरसेटशाइर के आसपास जो देखा उसी ग्रामीण वातावरण को उसने अपने उपन्यासों में बनाये रखा है। उसके वेसेक्स का जल-थल आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी के प्रान्त से सबद्ध है। बस, इससे आगे इन उपन्यासों में निर्जीव पात्रों की कहानी है। हाँ, स्काट के गुण इनके उपन्यासों में मिल जाते हैं।

— ५ —

हिन्दी उपन्यासकारों ने, कथा के मूल अभिप्राय के लिए न सही, मनोरंजकता लाने के लिए ही, प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन करने में रुचि दिखायी है। कहानियों

Louis Cazamian ने A History of English Literature में लिखा है —

"They (Hardy's Novels) are Novels of provincial and even rustic life for if the scene is sometimes shifted from the country to the towns, these are sleeping boroughs or cities flooded by the influences of fields. Oxford, the great University, which lifts its Towers and spires on the horizon, is to the north the boundry of the agricultural country, hardly eaten into by the fever of modern manners, whose heart is Hardy's own Dorsetshire, and for which he has kept its old name of "Wessex "

भी मनोरम प्राकृतिक दृश्यो से जडी हुई मिल जाती है। निस्सदेह उन प्राकृतिक दृश्यो में पहले पात्र को मनोभावानुकूलता मिलती है। वे दृश्य पात्रो की मनोवस्था के लिए लिखे जाते हैं, अथवा इन चित्रणो मे घटना-स्थल की श्री के प्रदर्शन करने, और उसमें पाठक को बिरमा लेने का कौशल मिलता है। बाबू वृन्दावनलाल वर्मा में प्रकृति के दृश्य-चित्र इस विधि से नही आ पाये हैं। वे चित्र केवल कल्पना से नहीं, बहुधा यथार्थ हैं और उनके लिए पात्रो के भाव नही बने, उन दृश्यो की भूमिका में भाव खडे होते हैं।

हिन्दी के उपन्यासकारो ने प्रकृति-दृश्यो के अतिरिक्त कथा के मूल अभि-प्राय पर, पात्रो के चरित्र-निर्माण पर, और इनके कथा-वस्तु में नियोजन पर ही दृष्टि रखी है, पात्रों की आकृति पर ध्यान नही दिया है। चरित्र-विकास में स्वगत कथन और कथोपकथन का विशेष प्रश्रय लिया गया मिलता है। वर्माजी ने अपने पात्रो को इन साधनो से उपस्थित नही किया। उनकी तूलिका भिन्न है।

एक तो उन्होने पात्रो की आकृति का वर्णन करने में उदासीनता नही दिखायी, छोटी से छोटी बात का, सूक्ष्मतर उल्लेख उन्होने किया है। एक परिचय इस प्रकार है, 'एक की आयु सत्रह या अठारह वर्ष से अधिक न होगी। प्रशस्त ललाट कुछ लबाई लिये, गोल चेहरा, आखे कुछ बडी और बादाम के आकार की हल्की काली नाक सीधी और होठ लाल, ठोडी आधारमें एक हल्के से, गढेवाली और जरा-सी आगे को झुकी हुई और गर्दन सुराहीदार। केश पीछे गर्दन तक लबे और बिल-कुल काले और उन पर कही-कही रेत के कण। भौहें, पुतली, लबी और खिची हुई और पलक दीर्घ। सीना चौडा और कमर बहुत पतली, बाहु लबे और हाथ की उँगली पतली। मूँगिया रग के कपडे पहने हुए, छोटी-सी ढाल और तरकस पीठपर कमर मे तलवार और कधे पर कमान। भाल पर लगा हुआ रोरी का तिलक किसी समय हाथ पड जाने से पुछ गया था और माथे पर तिरछी लकीर के आकार मे बन गया था। इस आरक्त वक्र रेखा ने मुख के हलके गेहुँए रग को और भी तेजोमय बना दिया था।' (गढकुण्डार)

आकार-प्रकार के साथ रगरूप और विविध अगो का पारस्परिक अनुपात तक इस परिचय में आ गया है।

(Physiognomy) आकृति का चरित्र और स्वभाव से घनिष्ठ सम्बन्ध है। आकृति-विज्ञान भी एक विज्ञान है, और उपन्यासकार के लिए तो वह बहुत महत्वपूर्ण है। आकृति-विज्ञान तो दूर, हमारे उपन्यासो में मनुष्यो की आकृति तक पर यथावत् ध्यान नही दिया गया है। बाबू वृन्दावनलाल ने अपने अनुभव से अपने प्रत्येक चरित्र के वैशिष्ट्य के लिए विशेष आकृति का विधान अवश्य किया है, और उसमे उन्होने अपनी दक्षता अवश्य दिखायी है। उनके उपन्यासो मे विविध आकृतियो की प्रदर्शिनी है।

इस विशेषता के साथ उन्होने चरित्र-निर्देश के अन्य प्रचलित साधनो को छोडकर आचरणगर्भित चरित्र के सकेत का सहारा लिया है। स्वगत-कथन चरित्र के सूत्र को दिखाने के लिए नही, केवल मनोगत सकल्पो के लिए कराये गये है फिर भी ऐसे कथन कम है। कथोपकथन है, पर वे मन के भावो को छिपाने के लिए है। उनमे चरित्र का अभीष्ट नही ज्ञात होता। मन के सघर्ष को लेखक ने वाणी नही दी, कभी-कभी आचरण के विशेष झुकाव की झलक, सयत और राग-शून्य दिखाकर ही उसका ज्ञान कराया गया है। यह एक बडी बात है।

गढकुण्डार मे दिवाकर तारा को प्रेम करने लगा है, पर उसे अत्यन्त सयत रखा है, यहाँ तक कि वह स्वय यह मानने को प्रस्तुत नही कि उसका चचल मन या एक ब्राह्मण-कुमारी की ओर जायगा। फिर तो वह अपने प्राणो पर खेल-कर तारा के शरीर मे सर्पदश का विष चूस लेता है। इस सारे कृत्य मे उन्माद कही नही। इस स्थल का एक अवतरण देखना होगा [तारा को सर्प ने काट लिया है। वैद्य जगजीवन ने उपाय बताये पर उनमे देर होती थी, तब ?]

'दिवाकर ने व्यग्रता के साथ कहा-'क्या कोई और उपाय नही है ?'

जगजीवन ने उत्तर दिया -'है, पर अतीव कठिन है। कोई अपने प्राणो पर खेलकर मुह से घाव के विष को चूस ले। अभी साँप को काटे अधिक विलम्ब नही हुआ है।' और उसने एक क्षण मे सब उपस्थित लोगो के चेहरो की ओर निगाह डाली। कोई आगे न बढा। सहजेन्द्र ने कुछ लक्षण साहस का दिखलाया, परन्तु किसी ने वेग को लक्ष्य नही कर पाया, केवल देखा। दिवाकर का मुह घाव पर लग चुका था।

सबके मुह से उस भीम कर्म पर 'ओफ' निकल पडी और धीरे-धीरे सब दिवाकर को घेरकर खडे हो गये। अग्निदत्त बहुत चिन्ता के साथ उसकी ओर देख रहा था।

दिवाकर कोमलता के साथ अपने दोनो हाथो से तारा का पहुँचा पकडे हुए था, और बडी दृढता के साथ घाव को चूस रहा था।

तारा ने आँखें खोल दी थी। वह अचेत नही थी परन्तु मुख मुर्झा गया था। उसने हाथ को हटाने की चेष्टा नही की, लेकिन वह दिवाकर को प्राण-बलिदान का निषेध करना चाहती थी, और वह निषेध उन मधुर और करुण नेत्रो में वर्तमान था।

× × ×

इसपर दिवाकर ने घाव को छोड दिया। दिवाकर के मुह पर उस समय एक ऐसी दीप्ति व्याप्त हो रही थी, जैसी देर के बाद अपनी मा को देखने पर छोटे-से बालक के मुख पर दिखलायी पडती है।'

तारा और दिवाकर के चरित्रो में प्रेम अकुरित हो गया है, उसकी सपूर्ण आग भी है, पर वह यहाँ जिस आचरण के द्वारा प्रकट हुई है वह कितना सयत है, और न ताराकी आँखें ही अथवा दिवाकरकी दीप्ति ही कोई रग प्रकट करती है। दिवाकर का उत्साह जैसे सहज उपकारी का और तारा का सहज कृतज्ञता का और बस। पर इसीमे निश्चय उस प्रेम के झुकाव का दृढतर सकेत मिलता है। ऐसा प्राय सभी उपन्यासो में है। लेखक ने एक ही कृत्य को दो अर्थ में समन्वित कर देने का कौशल किया है—वह कृत्य प्रेम के कारण भी हो सकता है, और सहज स्वाभाविक रूप में अवसर-अनुकूलता के कारण भी, इसी कौशल पर से उस व्यापार में रग नही रह पाता पर सकेत और अर्थ प्रबल हो जाता है।

आचरण-गर्भित-चरित्र के सकेत से एक लाभ यह हुआ है कि उपन्यासो में एक आकर्षण आ गया है, एक उत्सुकता आ बैठी है, वह रहस्यमयता के कारण नहीं वरन् पात्रो के अपने आचरण-कौशल के कारण। रहस्य जैसी चीज तो इन

उपन्यासो में कम है-पात्रो के मिलते ही हम उनकी दशा को जान जाते है। पूना का झुकाव अमित की ओर, कुमुद का कुञ्जर की ओर है, तारा का दिवाकर और रामाका देवसिंहकी ओर है,पाठकके लिए यह आरम्भसे ही स्पष्ट है,यद्यपि परस्पर पात्रो को उतना नही। अत जब परस्पर पात्रो को उसकी यथार्थता विदित होती है, तो पाठक को कोई आश्चर्य नही होता। उसे तो पात्रो के उस कौशल में आनन्द प्राप्त होता है जिससे वे अपने रूप को छिपाने-छिपाते ही हमारे समक्ष अधिकाधिक स्पष्ट होते चले जाते है।

इस प्रकार पात्रो के चित्रण मे उपन्यासकार ने अदभुत कौशल से काम लिया है। इसमें सन्देह नही कि वर्मा जी के उपन्यासो मे बहुत कम पात्र है-एक तारा है 'गढ कुण्डार' की जो 'लगन' में रामा, 'प्रेम की भेंट में' सरस्वती, 'कुण्डली-चक्र' में पूना, 'विराटा की पद्मिनी' में कुमुद का रूप धारण करके उपस्थित हुई है। दूसरे दिवाकर है 'गढ कुण्डार' के जो 'लगन' मे देवसिंह, 'प्रत्यागत' मे मगल, 'प्रेम-की भेट में' धीरज 'कुण्डलीचक्र' मे आनन्द और 'विराटा की पद्मिनी' मे कुञ्जर हो गये है।

वस्तुत यही दो पात्र है मुख्य, और इन्ही की कहानी उपन्यासो का मूल-स्पन्दन स्थान है। और इनकी कहानी के साथ भी उपन्यासकार ने एक विशेष कौशल का उपयोग किया है। ये कहानियाँ उपन्यास के ताने-बाने मे ऐसी निभृत रहती है जैसे शरीर में हाड-मास-रक्त-स्नायु मे हृदय। वर्मा जी के उपन्यास की सारी घटनाये इन दो पात्रो की घटनाओ-कहानियो के बीच मे आड बनकर जैसे घूमती चली जाती है। गढ कुण्डार में नागदेव का विफल प्रेम, अग्निदत्त का अपमानित प्रेम, बुन्देलो और खगारो की कूटनीति, विग्रह और नाश, इन सबके बीच मे तारा और दिवाकर की कहानी जगमगाती-अछूती-सी बही चली जाती है और इसी कहानी का climax ही जैसे उपन्यास का climax बन बैठता है। 'लगन' मे देवसिंह और रामा के प्रेम की कहानी औरो से आँखें छिपाकर भी चलती चली जाती है,'प्रेम की भेट में' सरस्वती और धीरज की कहानी अन्य विविध घरेलू व्यापार-व्यवसाय और आमन प्रेम के भीतर चलती रहती है। कुण्डलीचक्र में पूना और अजित कुमार की कहानी भी उपन्यासकार ने इसी प्रकार ललित सेन

भुजबल, शिवलाल के विविध दाव-पेचो में होकर खडी रखी है, और 'विराटा की पद्मिनी' में उस समस्त राजकीय उपद्रव और धुआँधार में भी कुञ्जर और कुमुद की कथा स्पन्दन देती है, और सबसे जैसे अलग-निस्सग खडी है। विविध पात्रो के उन्मत्त सघर्ष में होकर अवगुण्ठनवती स्त्री की भाँति यह एक कहानी सभी उपन्यासो में सुरक्षित है, घोसले में रखे हुए एक अण्डे की भाँति।

और इस कहानी का प्रेम भी लज्जारक्त रहनेवाला है, धीरे धीरे अत्यन्त धीरे धीरे स्फुट और पुष्ट होता चलता है, अन्त में कुछ तीव्र और चचल होता है, पर मर्यादा के बाहर नही जाता है। एक के बाद एक घटना होती जाती है, प्रेम पुष्ट होता चलता है,प्रिय दूर-दूरसा होता हुआ भी धीर गम्भीर गति से निकट आता चला जाता है। और अन्त में आलिङ्गन-पाश में बँध ही जाता है-हलकी व्यग्रता आकर प्रेम के इस गम्भीर समुद्र में हलकी हिलकोर उठा जाती है। प्रेम यथार्थ दिव्यता का रूप ग्रहण करके चमक जाता है।

इसके अतिरिक्त और जितनी कहानियाँ ताने-बाने की भाँति उपन्यासो में बुनी गयी है वे एक दूसरे को काटती-पीटती,उतार-चढाव, तेजी-नरमी दिखाती हुई धूप-छाह सी लगती है। उसमें लेखक के अन्य उद्देश्य छिपे है, उनमें दूसरे तया विविध पात्र आते है पर वे भी कम ही है।

'गढ कुडार' मे नागदेव और हेमवती 'विराटा की पद्मिनी' में उलट कर गोमती और देवसिह हो गये। नाग देव प्रेम करता है और विफल होता है, उधर गोमती प्रेम करती है और विफल होती है। मानवती रतन बन जाती है कुछ सयत और अधिक धार्मिक होकर। 'गढकुडार' का पुण्यपात्र ही 'विराटा की पद्मिनी' में बडा होकर लोचनसिह है-और इसमें बुन्देलो का रूप अधिक तेजी से उद्भासित हो उठता है।

हुरमतसिह, नायकसिह, देवीसिह, शिवलाल, ललितसेन आदि आभिजात्यवर्ग के पुरुप मूलत एक ही रेखा पर चलनेवाले है। अपनी सम्पत्ति पर गर्व है और अपनी इच्छा की पूर्ति के लिये उचित अनुचित की चिन्त नही करते शक्ति से भी और छल से भी वे अपने उद्देश्य को पूर्ण करने में भयभीत नही होते। हाँ, ललितसेन औरो की अपेक्षा अधिक उदार है पर उसमें भी ऐरिस्टोक्रेसी के दोप विद्यमान है—ऐरिस्टोक्रेसी का मुख्य गुण whim (धुन) तो इनमें सबसे अधिक मिलती है, धुन में सारी स्थिति को साफ-साफ न समझ

सकना अथवा दर में समझ पाना यह भी गुण यहाँ पूर्ण मात्रा में विद्यमान हैं ।

उधर सोनपाल हैं पर वे कोई विशेष व्यक्तित्व नहीं रखते । अपने मंत्री धीर प्रधान के समक्ष उनका और मंत्री पुत्र दिवाकर के सामने सहजेन्द्र का व्यक्तित्व गौण पड़ जाता है । नागदेव अवश्य एक पूर्ण व्यक्तित्वशाली युवक है, और राजकीय पंक्ति में होने से उस वर्ग के गुण रहते हुए भी वह उस वर्ग के अन्य पात्र-व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक तेजमय दीखता है ।

एक रामदयाल है जो चरित्र में शेक्सपीयर के इआगो (Iago) से होड़ करता है, जिसमें दूसरों के लिये भ्रमको वास्तविक अर्थ देने का अद्भुत कौशल है, जिसमें दूसरों की महानता से अनातंकित रहने का स्वभाव है पर जिसमें स्वामिभक्ति का गुण इन सब दोषों के लिये ढाल बना हुआ है और इसे इआगो से एकदम अलग कर देता है । रामदयाल में अर्जुन कुम्हार की स्वामिभक्ति आयी है, अपने साथ छल-बल लेकर । यों कहा जा सकता है कि रामदयाल अर्जुन और भुजबल से मिलकर बना है ।

अग्निदत्त पांडे भी नागदेव की भांति अकेले हैं, वह प्रेम के अभिशाप की भाँति अपनी मातृभूमि को पददलित कराने के साधक हैं । इसके भाव के समकक्ष 'प्रेम की भेंट' की उजियारी ही पहुँचती है, जो प्रेम से अभिशप्त होकर, जिसके हाथों विफलता पायी है उसे नष्ट कर देने के लिये प्रस्तुत हो जाती है ।

इस प्रकार पात्र कम होते हुए भी प्रभावशाली हैं, उनकी सहायता से उपन्यासों में रौनक सुगठन और घनिष्ठता आगयी है, कथा-वस्तु में विशृंखलता और confusion नहीं आ पाया । इन पात्रों के अध्ययन से यह भी प्रतीत होने लगता है कि वृन्दावनलाल वर्माजी से निकट-पूर्व के उपन्यासकारों के पात्र-चरित्रों के कुछ अवशेष उनमें भी मिल ही जाते हैं । रसिक, विलास-विभोर पात्रों का जो रूप गोस्वामीजी ने खड़ा किया है वह वर्माजी के आभिजात्यवर्ग में खत्रीजी के भूतनाथ का दुर्बल रूप रामदयाल में हलका-हलका झलक जाता है—निस्सन्देह इनमें बहुत परिमार्जन हुआ है । इनसे वर्मा जी ने दूसरे ही काम लिए हैं, पर निकट-पूर्व के काल का अवशेष इनमें अवश्य है ।

पर इन सब रोमासो से लेखक के हृदय मे कुछ चुभा है, कुछ समस्याएँ खडी हुई है और उनके लिए भी वे इस कार्य मे प्रवृत्त हुए हैं। रोमास के आधार पर उनके अभिप्रायो का भवन खडा किया गया है; उन अभिप्रायो के कारण ही कही-कही पूर्व युग के अवशेषो की भाति मिलनेवाले कुचक्र तथा भ्रष्टाचार की ओर प्रवृत्ति भी अखरती नही, ये भी समस्या के सहायक अग होकर आये हैं। रसिक-रोमास की भाँति अपने आप मे ही वे महत्व नही रखते।

वे समस्याएँ क्या है? 'गढ कुडार' मे वे असवर्ण विवाह को लेकर है। नागदेव खगार होकर बुन्देल हेमवती को प्रेम करता है, अग्निदत्त ब्राह्मण होकर खगार मानवती पर रीझा हुआ है, और दिवाकर कायस्थ होकर ब्राह्मण कन्या तारा पर न्यौछावर हो रहा है। समाज इस प्रेम को विवाह का रूप नही दे सकता, पर प्रेमी-युगल उसकी अवहेलना करेंगे। समाज में सघर्ष होगा, खून खरावी तक होजायगी। समाज के समक्ष यह प्रेम जीत नही सकेगा। वह विफल होगा, या उसे समाज के नियमो के क्षेत्र के वाहर निकल जाना पडेगा। नागदेव का प्रेम विफल हुआ, अग्निदत्त का भी विफल हुआ। दिवाकर सफल हुआ और उसे अपना भविष्य इन शब्दो मे निश्चित करना पडा

'तारा, हमारा सयोग अखड और अनत है। वर्णाश्रम धर्म हमारी देह के सयोग का निषेध कर सकता है। परन्तु आत्मा के सयोग का निषेध नही कर सकता। यही हमारा सयोग है। तारा हम लोग योग-साधन करेंगे।'

योग-साधन का मार्ग समाज के नियमो से वाहर चले जाने, समाज के अत्याचार से बच जाने के लिए सूझा। यद्यपि लेखक ने यथार्थ के आगे सिर झुका दिया है। status quo को बनाये रखा है, पर वर्ण-आश्रम पर अपनी प्रबल टिप्पणी इन प्रेम-कहानियो के द्वारा उसने कर दी है। प्रेम जाति-पाँति देखकर कब चलता है?

'गढ कुडार' में दूसरी समस्या भी कुछ इससे मिलती जुलती जात्यभिमान की है। बुंदेलो में खगारो के प्रति घृणा है। खगारो का शासन इसीलिए या तो

बल पर टिकेगा, अत्याचार का प्रतीक हो जायगा, या फिर शिथिल हो जायगा। जाति के सामाजिक महत्व का राजनीति पर भी विषाक्त प्रभाव पड़ता है। जाति के अभिमान के सम्मुख मनुष्य के प्राणो का भी कुछ मूल्य नही। इसी से सम्बद्ध होकर प्रश्न है निम्न जातियो को उच्च जातियों में अपनी गणना कराने का आग्रह। प्रसगवशात् जातीय व्यवहारों से मुक्त होकर शराब-पान का भी दुर्दृश्य दीख पडता है। घर के भेदी से लका ढहायी जाती है, और ये भेदी सामाजिक अत्याचार के कारण उत्पन्न हो जाते है। सामाजिक व्यवस्था के कारण ही अयोग्य सबध भी करने पडते है।

'सगम' मे समस्या का आधार वर्णसकरता है, उसी ब्राह्मण पिता के घर मे उसका स्थान, अपनी औरस सतान कन्या की चिन्ता से उसका ब्राह्मण पिता निष्ठुर होकर उसे आश्रय तक नही दे पाता है। जातीय सभाओ की विडम्बना, नाई के पत्नी ब्राह्मण कन्या और तत्सबधी प्रश्न, हँसी का दुष्परिणाम और कर्म से विकार। येही सगम मे प्रसगवशात् आगये है।' लगन' मे 'दहेज' इसी अभिप्राय के अन्तर्गत है। 'प्रत्यागत' मे हिन्दू और मुसलमान के साथ समाज के धर्मपीठ के ठेकेदारो की (conservative) अपरिवर्तनीय नीति, मदिरो और जातीय सस्थाओ का व्यक्तिगत रुचियो का शिकार बनना, और विधर्मी हुए लड़के को हिन्दू-धर्म मे लेने और उसके लिये प्रायश्चित, ये सभी बाते जातियो की परस्परिक चढा-उतरी के रग मे रँगकर आयी है। भूत-प्रेतो के विश्वास की भी विवेचना है। पर गहरी नही।

'प्रेम की भेंट' में बाल-विधवा अपने प्रेमपूर्ण हृदय को लेकर उपन्यास की समस्या प्रदान करती है। 'कुण्डलीचक्र' को समस्याएँ जरा गम्भीर हो गयी है। एक तो विकासवाद के सिद्धान्त की व्यवहारिक-हीनता सिद्ध करने का प्रयत्न है, जो विशेष सफल नही। कालिन्दी और जमीदार का किसानो के साथ व्यवहार, अटा-सटा की रस्म, बहु-विवाह आदि का भी समावेश इसमे है। 'विराटा की पद्मिनी' मे भी ऐसे ही जात्यभिमान, दासी-पुत्र, धार्मिक रोग आदि आ गये है। इन उपन्यासो में बहुधा मुसलमानों की स्वामिभक्ति भी प्रदर्शित की गयी है, उनमें हिन्दुओ के देवी देवताओ और मन्दिरो के प्रति श्रद्धा भी मिलती है, पर सुन्दरी स्त्रियो पर वे अपना अधिकार समझते है।

इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि वर्माजी में सामाजिक रूढ-शृङ्खलाओ के प्रति विद्रोह भरा है, जिन साधनो से व्यक्ति के औचित्य का विवश सम्मान नही होता, उन्हें तोड डालने को वे आकुल है। पर यह विद्रोह क्रान्तिमूलक नही, नाश के लिए इसमें आग्रह नही है। परिवर्तन भी वह जो सशोधन का रूप रखे, वे आमूल परिवर्तन के पक्ष में नही। वस्तुत उन्होने इन सामाजिक हीनताओ से होनेवाले काण्डो और परिणामो का चित्रण कर दिया है, विद्रोह का रूप भी दिखा दिया है, पर कोई हल नही रखा। इससे कलाकार का महत्व कम नही होता।

वर्माजी ने इन समस्याओ को अपनी कला के अभिप्राय में स्थान दिया है, कला के रूप में नही। आपके उपन्यास पढने में उपन्यास है, कही भी उपरोक्त समस्याओ पर विशेप विवाद और व्याख्यान नही। घटना-प्रवाह और आचरण से ये समस्यायें खडी हो जाती हैं, 'प्रत्यागत' को छोडकर,इसलिए सभी में उपन्यासत्व उग्र वना रहता है।

वर्माजी के सभी उपन्यासो में 'प्रेम की भेंट' और प्रत्यागत' को छोडकर एक वात आती है-वह है देवी या पीपल की पूजा। 'गढकुण्डार में' में तारा देवी की पूजा करती है,' लगन' में रामा पीपल की पूजा करती है,'कुण्डलीचक्र' में पूना देवी की पूजा करती है, 'विराटा' की पद्मिनी' में तो देवी की पूजा का सूत्र आरभ से अन्त तक वना रहता है। इस सावन से उपन्यास में एक अलौकिक गरिमा आ जाती है।

वर्माजी का उपन्यासो का सस्थान Structure अत्यन्त सुगठित है। एक एक कडी सुनिश्चित है। इसीलिये उसमें 'अनायास 'को स्थान नही।

'प्रत्यागत' वर्माजी का सवसे अलग उपन्यास है, और अन्य उपन्यासो की सयोजना में इसका कोई स्थान नही वनता। 'कोतवाल की करामात' को तो लखक ने स्वय दूसरे मित्र का लिखा मान ही लिया है।

वर्माजी शुद्ध भारतीय और साहित्यिक रोमास को हिन्दी उपन्यासो में स्थान देनेवाले है, उनकी कला अपने मौलिक तत्वो पर खडी हुई है, अत यह कहकर कि वर्माजी के उपन्यास रोमास है उन्हें साहित्य का विचारक एक ओर नही हटा सकता। रोमास का युग समाप्त हो गया है पर वर्माजी की रोमास में जो यथार्थता

है वह प्रगति का समादर प्रकट करती है और, जिस रोमास का कभी अन्त नही होता वह इस यथार्थ पर खडी होकर प्रगति की वस्तु बनेगी ही ।

यहाँ तक यह तो जान लिया जा सकेगा कि वर्माजी के उपन्यासो में क्या है, भले ही अत्यन्त स्थूल रूप में हो, पर उनकी कला की सुषमा और उसका मूर्त रूप खडा न हो सकेगा, यह हमें यहाँ अभीष्ट भी नहीं ।* वर्माजी में क्या होना चाहिए, इसमें आज हमें रुचि नही । वर्माजी का यह कहना है कि 'हम कला-कला के लिए ही', Art for its own sake, को जबरदस्ती ठूँसठास के बाद भी नही मान सकते । सत्य सुन्दरम् के बीच में हमारे लिए शिव अत्यन्त आवश्यक है-मैं कहूँगा कि अनिवार्य है ।' अत वर्माजी ने भूत के साथ आज को छोडा तो नही, पर अब वे इस आज को ज़रा और भी गभीरता से देखें । उनके उपन्यासो मे आज का पूरा सतोष नही होता ।

दूसरा चरण

सन् १९३३ के उपरान्त श्री वृन्दावनलाल वर्मा की उपन्यास लेखनी कुछ रुक गयी और १९४६ में बम-विस्फोट की भाति दिशाओ को निनादित करता हुआ एक नया उपन्यास 'झासी की रानी लक्ष्मीबाई' अनायास ही हिन्दी-क्षेत्र में अवतीर्ण हुआ । इसने सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया और सबसे मुक्त प्रशसा का वरदान इसने उस समय प्राप्त किया । लोग चमत्कृत हुए। इस महान घटना के उपरान्त श्री वृन्दावन लाल वर्मा की लेखनी पुन अविच्छिन्न प्रसव मे प्रवृत्त हुई । आज तक आप कितने ही उपन्यास, नाटक, कहानिया प्रस्तुत कर चुके है, और कर रहे है ।

किन्तु १३ वर्ष का यह व्यवधान यद्यपि बहुत दीर्घ है फिर भी लेखक की दृष्टि से वह व्यर्थ नही गया । क्योकि झासी की रानी का वास्तविक आरम्भ १९३२ में ही हो गया था ऐसा मानना पडेगा । लेखक ने परिचय में बताया है

---

* इसके लिए देखिए इसी लेखक की दूसरी पुस्तक "वृन्दावनलाल वर्मा की कला और कृतित्व ।" (साहित्यरत्न भडार, आगरा)

प्राण भरने की चेष्टा करता है। रोमास लेखक का दावा यह तो होता कि उसने वस्तु और पात्र इतिहास से लिये हैं पर वह कभी यह दावा न करता, नही कर सकता कि जो कुछ वह लिख रहा है वह इतिहास न हो इतिहास की प्रामाणिकता रखता है। रोमास में एक स्वच्छन्द कल्पना-रज को स्थान मिलता है। उपन्यास में नही। तो, निश्चय ही इस नये उपन्यास लेखक ने रोमान्स का मार्ग छोडा है। परिचय में तथा परिशिष्ट में कुछ वाक्य है जो ध्यान देने योग्य है। परिचय में ये शब्द है —

"मेरा वह स्वप्न जिसकी भूमिका हाकी ग्राउन्ड पर थी फिर ता हुआ। मैने निश्चय किया कि उपन्यास लिखूगा ऐसा जो इतिहास के रग में सम्मत हो और उसके सदर्भ में ही इतिहास के ककाल में मास और रक्त सचार करने के लिये मुझको उपन्यास ही अच्छा साधन प्रतीत हुआ।"

ये शब्द कितनी स्पष्टतापूर्वक बता रहे है कि लेखक अपनी रोमान्स पुरानी टेकनीक को छोडकर नई टेकनीक की ओर अग्रसर हो रहा है। व ऐतिहासिक उपन्यास लिखने जा रहा है। उसके उपरोक्त शब्द प्रसिद्ध उपन्य लेखक आर्थर कानन डायल के इन्ही शब्दो की परिपाटी मे तो है, 'देअ इज़ नो इन्सीडेण्ट इन दी टैक्स्ट फार विच वेरी गुड वारट मे नाट बी गिव और वर्मा जी मागने पर घटनाओ की प्रामाणिकता देने के लिए नही ठहर उन्होने परिचय और प्रस्तावना तथा परिशिष्ट में स्वय ही प्रमाण प्रस्तुत क दिये है।

परिशिष्ट में उन्होने लिखा है कि "परिशिष्ट का यह खड प्रतिकू इतिहासकारो और श्री किकेड मरीखे अनुकूल लेखको की आलोचना के लिए नह लिख रहा हू। जिनको वास्तव में भ्रम निवारण करना हो वे इस उपन्या को पढें।" उपन्यास मे तो भ्रम फैलाये जाते है। यह लेखक इतिहास के द्वार फैलाये गये भ्रमो को उपन्यास के द्वारा निवारण करने का निमत्रण दे रहा है यह है वह अद्भुत दृष्टि जिसके कारण इस उपन्यास में एक अलग टेकनीक आयी। और जिससे यह उपन्यास नये प्रकार का उपन्यास हुआ, कान डायल की प्रामाणिकता से भी अधिक प्रामाणिक; क्योकि लेखक के अप

ही शब्दो में उपन्यास एक साधन है, अच्छा साधन। वह उसके लिये साध्य नही, वस्तुत साध्य है इतिहास और इतिहास के ककाल को मास और रक्त से सजीव करना। इसी दूसरे चरण में मृगनयनी अवतीर्ण हुई है। रानी लक्ष्मीबाई से मृगनयनी तक पहुँचते पहुँचते निम्न उपन्यास वर्मा जी ने लिखे –

कचनार, अचल मेरा कोई, सत्रह सौ उन्नीस, माधवजी सिंधिया, सोना– ऐसा वर्मा जी के सुपुत्र श्री सत्यदेव वर्मा जी ने एक पत्र में सूचित किया है। इस सूची मे 'टूटे काटे' और जोडना पडेगा क्योकि वर्मा जी ने स्पष्ट लिखा है कि टूटे काटे समाप्त करने के उपरान्त ही 'मृगनयनी' लिखा गया। टूटे काटे, माधवजी सिंधिया, सत्रह सौ उन्नीस अभी प्रकाशित नही हुए। मृगनयनी और लक्ष्मीबाई के बीच में प्रकाशित रचनाएँ कचनार, अचल मेरा कोई और सोना ही है। ये सभी उपन्यास अपना निजी महत्व रखते है, किन्तु लक्ष्मीबाई का यथार्थ शक्तिशाली उत्तराधिकारी उपन्यास तो मृगनयनी ही है।

अध्याय २

मृगनयनी

लेखक का उद्देश्य

लेखक उपन्यासकार है। उपन्यासकार ही नही रोमास लेखक है, रोमान्स भी ऐतिहासिक। रोमान्स की ठीक-ठीक परिभाषा आज तक नही हो सकी। 'दी इगलिश नोविल' नाम के ग्रन्थ में जार्ज सेनिट्स ले ने लिखा है कि–

"रोमान्स का मूल स्वय एक अत्यन्त विवादास्पद विषय है अथवा कम-से-कम यह एक ऐसा विषय है जिस पर समझदार मस्तिष्क शायद ही अधिक सिर खपाने की चिन्ता करेगा।" इस लेखक की राय में–जो कि कितने ही वर्षो केअध्ययन और मनन का परिणाम है–बात यह है कि यह (रोमास) पुरातन पूर्व तथा नवीनतर (नानक्लासिकल-अनोच्चकोटि) पश्चिम के उस परिणय का परिणाम है जो ईसाईयत के प्रसार तथा 'सत जीवन' के विकास तथा व्याप्ति के द्वारा सम्पन्न हुआ है।"

इस लेखक ने यह मूल बतलाने से पूर्व रोमान्स के दो तत्व स्थापित किये एक एडवेंचर अर्थात जीवट तथा दूसरा प्रेम। इसी सबन्ध में उसने आगे लिखा है कि "एक अच्छे रोमास के लिए अथवा कैसे भी अच्छे उपन्यास के लिए आपको गद्य तथा काव्य* को मिलाना होगा।"

यहाँ उसने 'रोमास' को 'उपन्यास' शब्द के साथ रख कर यह स्पष्ट कर दिया है कि रोमास तथा उपन्यास को वह अलग अलग रखने के पक्ष में

---

*लेखक ने पोइट्री शब्द का प्रयोग किया है। हिन्दी में गद्य के विरुद्ध पद्य शब्द का प्रयोग होता है, अगरेजी में प्रोज तथा पोइट्री का। पोइट्री का यथार्थ अर्थ 'काव्य' होगा, पद्य नही।

नही। स्वय इस लेखक ने ही यह स्पष्ट कर दिया है कि "रोमास तथा उपन्यास–घटनाओ की कहानी तथा चरित्र और अभिप्राय (मोटिव) की कहानी का पृथक्करण एक भूल है, तर्कशास्त्र की दृष्टि से और मनोविज्ञान की दृष्टि मे भी।" इस लेखक के मत से तो जब आप दो या अधिक पात्र गढकर उन्हे चलते-फिरते दिखाना आरभ कर देते है, तभी उपन्यास जन्म ग्रहण कर लेता है। रोमास मे नाटकीयता कम होती है और वर्णनात्मक पक्ष में काव्यात्मकता बढने लगती है, तभी तो परिणाम 'रोमास' होती है।

तात्पर्य यह है कि उपन्यास और रोमास घनिष्ठ रूप से सबधित है। हिन्दी मे तो रोमान्स भी उपन्यास के ही अन्तर्गत आते है। इस विवेचन से स्पष्ट है कि रोमास में एक ओर तो जीवट होनी चाहिये; कठिन, कठोर और सकट की स्थितियो का चित्रण तथा उन्हे साहस पूर्वक सामना करने वाले पात्रो का चित्रण दूसरी ओर चाहिए प्रेम का स्पदन। जीवट और शौर्य के वातावरण मे उद्दाम प्रेम व्याप्त हो। प्रेम के साथ काव्य का प्रवेश स्वयमेव हो जाता है, अत काव्यमय भावो का समावेश भी रोमास मे हो ही जाता है। इस रोमान्स की कथावस्तु जब ऐतिहासिक हो जाती है तो लेखक का कार्य और भी कठिन हो जाता है, क्योकि तब उसे अपने समस्त कथा-विधान की भूमि और वातावरण ऐतिहासिक ही रखनी पडती है। ऐतिहासिक रोमान्स मे लेखक मे एक व्यथा अथवा पीडा रहती है, जो उसके मन में इतिहास के प्राचीन अवशेषो और खडहरो को देखने के कारण उदित होती है। उन अवशेषो के साथ उसके मन पर उसके चारो ओर व्याप्त प्राकृतिक दृश्यावली का भी प्रभाव पडता है। उसमे एक रोमानी आत्मा उसे झलकती मिलती है, तब वह उनके इतिहास को खोजता है, और उसमें प्रेम का अपूर्व हाथ देखकर रोमाटिक हो जाता है। उसका व्यथित और सहानुभूतिपूर्ण हृदय उस समस्त अनुभूति को पात्रो के द्वारा अकित कर देना चाहता है। आधुनिक उपन्यासो मे बौद्धिक अभिप्राय विशेष आग्रह के साथ प्रस्तुत हो रहा है, रोमान्स मे उपन्यास के तत्वो के साथ एक काव्यमय अनुभूति की प्रबल प्रेरणा रहती है।

इस काव्यमय अनुभूति मे एक पौरुषेय दृप्तता तथा अनगढ प्रवृति का

भाव और समाविष्ट रहता है। रोमान्स लेखक और ऐतिहासिक रोमान्स लेखक प्रधानत इसी क्लिष्ट अनुभूति को प्रकट करने के लिये लेखनी उठाता है, किन्तु इसी के साथ उस पर कुछ सामाजिक दायित्व को भी निभाने का कृतित्व भी हो सकता है। इस स्थिति मे कोई न कोई सामयिक सदेश अथवा उपयोगिता भी रोमान्स मे आ सकती है। वर्माजी की रचनाओ मे रोमान्स और उपन्यास के कितने और कैसे तत्व है, इन पर 'मृगनयनी' के आधार पर विस्तार पूर्वक विचार तो आगे होगा, पर इतना यहाँ कहना आवश्यक है कि वर्मा जी ने परिचय मे यह सूचना दी है –

"१९४९ के अन्त में ग्वालियर की एक सम्मानित पाठिका ने मुझसे मृग-नयनी और मानसिंह तोमर के ऐतिहासिक रूमानी कथानक पर उपन्यास लिखने का अनुरोध किया। उन दिनो 'टूटे काटे' उपन्यास समाप्ति पर आ रहा था। उसको समाप्त करके कुछ लिखने की वाञ्छा मन में थी ही, मैंने उस कथानक की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अध्ययन, अवसर पाते ही, आरभ कर दिया। जिन स्थानो का सम्बन्ध उपन्यास की मुख्य कथा से है, उनका भ्रमण भी किया।"

इस कथन से हमें 'मृगनयनी' लिखने का शुद्ध उद्देश्य यही प्रतीत होता है कि उसमें ऐतिहासिक तत्व के साथ रूमानी तत्व भी विद्यमान है और उपन्यास-कार वर्मा के लिए किसी कथानकपर उपन्यास लिखने के लिए ये दो तत्व ही काफी थे। इतिहास को उन्होंने अध्ययन से और भी विवृत किया, और तत्सबधी ऐतिहासिक स्थलो का निरीक्षण करके वहाँ के वातावरण से और मूर्ति-स्थापत्य से इतिहास के पात्रों को मासल करने की रूमानी औपन्यासिक कल्पना को पुष्ट किया और, इस प्रकार उनका उद्देश्य शुद्ध रूमानी ऐतिहासिक उपन्यास प्रस्तुत करने का रहा। यह उद्देश्य स्पष्टत उस उद्देश्य से भिन्न था जो झासी की रानी लक्ष्मीवाई में निहित था, और जिसने झासी की रानी लक्ष्मीवाई के परिचय में उनसे ये शब्द लिखाये–"यदि आनन्दराय ने रानी के लिये गोली खाई और मेरी कलम ने थोडी सी स्याही–तो इस अन्तर को पाठक अवश्य ध्यान में रखने की कृपा करें।"

अत 'मृगनयनी' लेखक की उपन्यास कला मे उद्देश्य की दृष्टि से उस परिपाटी में आती है, जिसमें 'गढकुडार' और 'विराटा की पद्मिनी'। 'गढकुडार' व 'विराटा की पद्मिनी' की कला की कुछ रूपरेखा विगत अध्याय मे दी जा चुकी है। उसे हृदयगम करने के उपरात ही 'मृगनयनी' का मर्म जाना जा सकता है। 'गढकुंडार' १९२७ में प्रकाशित हुआ, 'विराटा की पद्मिनी' १९३३ में। १९३३ के उपरान्त १७ वर्ष की लम्बी अवधि देकर यह नया ऐतिहासिक रोमास १९५० में वर्मा जी ने भेंट किया है, इसे भी स्मरण रखना होगा।

अध्याय ३

मृगनयनी का कथा-विधान

मृगनयनी की प्रधान कथावस्तु निश्चय ही 'मृगनयनी' की कथावस्तु है। यह कथावस्तु मृगनयनी के जन्म से नही आरभ होती। सिकदरलोदी के आक्रमण के उपरात राई गावमें सबसे पहिले होलिकोत्सव पर१५-१६वर्षकी दो कन्याओ में हमे 'निन्नी' के रूपमे मृगनयनी के दर्शन होते है। इसके मा-बाप नही। वे मार डाले गये थे। अपने बडे भाई अटल के साथ वह रहती है, और अटल यथा-शक्ति उसकी रक्षा और पोषण करता है।

निन्नी अत्यन्त बलवती है, वह तीर चलाना जानती है। जगली सुअर और अरने को एक ही बाण में मार गिराती है। सु दर भी बहुत है। बहुत गरीब है। पसीने की कमाई से जैसे तैसे पेट पालती है, अपने भाई के खेत-क्यार में पूरा काम करती है, और कमी पडने पर शिकार मार लाती है।

मृगनयनी गूजर है, इसी की समवयस्का इसकी सलोनी सखी 'लाखी' है, दोनो बहुधा साथ रहती है। मृगनयनी लाखी को अहीर होते हुए भी अपनी भाभी बनाना चाहती है। दोनो मे बहुत प्रेम है। इन दोनो के शौर्य और सौन्दर्य की चर्चा जहाँ तहाँ फैलती है।

राई गाँव का पुजारी बोधन मृगनयनी के सौन्दर्य और शौर्य की प्रशसा अपने ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर से करता है। वह चाहता है राजा उस निन्नी के शौर्य को देखने एकबार राई चले और उसका मदिर बनवादे किन्तु राजा मानसिंह को अभी अवकाश नही।

उधर इन दोनो ही के सौन्दर्य-शौर्य की चर्चा मांडू के सुल्तान गयासुद्दीन खिलजी के कानो में उसके अन्तरग ख्वाजा मटरू के द्वारा पडी। गयास के सकेत से मटरू ने नटो से सबध जोडा और उन्हें मृगनयनी तथा लाखी को फुसला लाने

का कार्य सौपा। यह नटो का समुदाय राई के निकट पहुँचा, मृगनयनी और लाखी से मिला। नटो के षडयन्त्र से माडू के चार सवार इन दोनों को पकड ले जाने के लिए आये, पर उनमे से दो उनके हाथो मारे गये, दो भाग गये। इन सवारो की चर्चा से गाव फिर किसी आक्रमण के भय से काप उठा। तब बोधन ग्वालियर गया और राजा मानसिंह को साथ ही लेकर आया। इससे गाववाले आश्वस्त हुए। मृगनयनी और लाखी की परीक्षा हुई। मृगनयनी ने सिह को एक ही बाण मे मार कर गिरा दिया। अरने को मारा और सीग पकड के उसे मोड दिया। राजा मानसिंह पहले ही मृगनयनी के नयनो मे उलझ चुका था, अब तो पूर्णत बिक गया। उसने मृगनयनी से विवाह किया। गांव में ही विवाह सम्पन्न हुआ, विवाह के उपरान्त मृगनयनी ग्वालियर के महलो मे आ गयी। यहाँ से 'मृगनयनी और राजा मानसिंह' का वृत्त एक सूत्र मे ग्रथित होकर चला। यहाँ तक उपन्यास लगभग आधी यात्रा समाप्त कर चुका है। उपन्यास का १९५२ का तृतीय सस्करण ४८७ पृष्ठो मे समाप्त हुआ है, इसमे यह स्थल पृ० २१० तक सम्पन्न होता है। राई मे आकर मृगनयनी से मिलने से पूर्व राजा मानसिंह तोमर की हमें प्राय दो झाकिया मिलती है, सबसे पहले वे हमे उस समय सामने दिखायी पडते है, जब वैष्णव पडित और विजयजगम में शास्त्रार्थ हो रहा है और वे निर्णय के लिए राजा की सेवा में उपस्थित होते हैं, उसी समय बोधन पुजारी भी पहली बार पहुँचता है। बोधन पुजारी उन्हे राई की दोनो लडकियो के साहस की बातो से परिचित कराता है, और राई आने का निमत्रण देता है। मानसिंह विवाद को भी शान्त करते है। दूसरी झलक में राजा मानसिंह तथा विजयजगम शास्त्र-विद्या का अभ्यास करते दिखायी पडते है, अन्य बाते भी होती है, जिनमे एक तो राई की दोनो बालिकाओ का स्मरण भी आता है, और राजा मान अपनी उस कल्पना को प्रकट करते है जिससे वे भविष्य में राग-रागिनियो को मूर्तियो में सजीव करना चाहते है। तीसरी झलक में मानसिंह में हमें कला-प्रियता और उसका आदर तथा युद्ध-वीरता का परिचय मिलता है, यही बोधन पुजारी पुन आकर राजा मान को राई ले जाने का निश्चय करा लेता है।

इसके उपरात का कथा-सूत्र मृगनयनी और राजा मानसिंह से

सबध रखनेवाला सूत्र महलो का सूत्र है-इसमें हमें एक ओर तो मृगनयनी की कला-प्रियता और शिक्षा का उद्योग दिखायी पडता है। कला, बैजू नायक और विजयजगम से वह चित्र, नृत्य, सगीत, साहित्य आदि की शिक्षा प्राप्त करती है; दूसरी ओर राजा मानसिंह की आठ अन्य रानियो में से पटरानी सुमनमोहिनी के डाह का चरित्र दिखायी पडता है। इसमें मृगनयनी को लगभग तीन बार विष देने का यत्न है। तीसरे राजा मान के भवन-निर्माण का प्रेम है तो चौथे सूत्र के रूप में मिलती है चित्राकन के द्वारा राजा मान को कला और कर्तव्य तथा युद्ध के प्रति सतुलित भाव रखने की प्रेरणा देने का प्रयत्न।

इस काल की अन्य घटनायें ये हैं-नरवर पर गयास की चढाई। मानसिंह का रक्षा के लिए पहुँचना, वहाँ से लाखी और अटल का उद्धार और उन्हें साथ लाना। सिकदर लोदी का ग्वालिमर आक्रमण और उसका प्रत्यावर्त्तन, सधि की वार्ता में मानसिंह के सेनापति दूत निहालसिंह का सिकदर द्वारा वध। मानसिंह की मजदूरो के प्रति सहानुभूति, मजदूरोके झोपडे में उन्होने चक्की पीसी, लाखी और अटल के विवाह से क्षुब्ध होकर बोधन ग्वालियर से गया और सिकदर लोदी के समक्ष मौलवियो से शास्त्रार्थ किया, जहाँ अन्त में उसका वध कराया गया, राई में गढी का निर्माण। सिकदर का पुन आक्रमण, वह पुन विफल। उसका नरवर पर आक्रमण और नरवर का ध्वस।

इस प्रधान वस्तु के साथ इस वस्तु की सहायक वस्तु लाखी और अटल का कथा सूत्र है। यों यह कथा-सूत्र उपन्यास की मुख्य वस्तु भी माना जा सकता है।

लाखी और मृगनयनी के हमें साथसाथ दर्शन होते है, राई में होलिकोत्सव पर। लाखी के केवल एक मा है, पर उपन्यास-कथा में उसका केवल उल्लेख होता है, उसे पात्रता नहीं मिलती। लाखी मृगनयनी की सखी बन गयी है, उसी के साथ रहती है, राई में दोनो ही शिकारादि में साथ रहते है। इस प्रकार लाखी मृगनयनी के भाई की ओर आकर्षित होते होते उसके प्रेम में डूब जाती है, पर चरित्र में दोनो दृढ है। लाखी की मा मर जाती है, तब लाखी को विवश होकर अटल और मृगनयनी के घर ही रहना पड़ता है।

सुन्दरता और शौर्य का यश मृगनयनी के साथ लाखी का भी फैलता है। नट लाखी पर भी डोरे डालते हैं। लाखी नटो से रस्सी पर चलने का काम सीखती है। मृगनयनी का विवाह हो जाने पर अटल लाखी से स्वय गगाजल लेकर विवाह कर लेता है। गांववालो का विरोध तीव्र होने पर नटो के साथ दोनों गाव छोडकर चल देते हैं। मॅगरौनी ठहरते है। नट लाखी को गयास के पास पहुँचाना चाहते है। पिल्ली इस विषय में पूर्ण सचेष्ट है, वह अटल पर अनुरक्त हो गयी है। गियासुद्दीन नरवर पर आक्रमण करता है। भयातुर अटल और लाखी और उनके पीछे नट-दल नरवर के किले मे शरण लेते हैं। पिल्ली-पोटा गियासुद्दीन से मिलकर न केवल लाखी को हस्तगत करने वरन् नरवर पर भी अधिकार करने का षडयत्र रचते है और मटरू मे मिलकर यह षडयत्र स्थिर कर लेने के उपरात वे कौशल और छल से नरवर में प्रवेश पा लेते हैं। रात मे किले से बाहर जाने की योजना तय्यार होती है, लाखी और अटल भी तैयार है, किन्तु वे षडयत्रको जान गये है। सब नटो के उपरान्त जब पिल्ली रस्सी मे उतर रही होती है, लाखी रस्सी काटकर उसका काम तमाम कर देती है। नरवर की रक्षा हो जाती है। प्रात मानसिह आकर लाखी और अटल को लिवा ले जाता है। यहाँ मे फिर लाखी और अटल का सूत्र मृगनयनी मे मिलकर महलो की कहानी बनाने मे सहायता देता है। मृगनयनी लाखी और अटल का विवाह विधिवत् कराती है। अटल मे संगीतानुराग जगता है, पर बैजू उसे बुरी तरह डाट देता है। सिकंदर के आक्रमण मे कुछ पूर्व राई मे गढी बनवादी जाती है। सिकदर के आक्रमण के समय लाखी और अटल राई की गढी में रहते है। गढी की सुरक्षा में रात्रिको गढी पर छिपकर चढने वाले शत्रुओ मे घायल होकर लाखी प्राण त्याग करती है पर गढी को बचा लेती है। प्रात अटल अपनी सेना के साथ मैदान में मर मिटता है। मृगनयनी लाखी की माला को ले जा कर उस लाखी के चित्र पर टाग देती है जो उसने अपने गूजरी महल मे स्वय चित्रित किया है।

यह सहायक वस्तु है। सहायक वस्तु मुख्य कथावस्तु से घनिष्ठ सबन्ध रखती है सहायक वस्तु के तन्तु मुख्य कथा-वस्तु के तन्तुओ से लिपटते चलते है,

मुख्य कथावस्तु के मर्म को स्पष्ट करने तथा उस वस्तु के विकास में भी सहायक वस्तु का गहरा योग रहता है ।

फिर इस उपन्यास मे एक प्रासगिक वस्तु है माडू के सुल्तान की । गियासुद्दीन माडू का सुलतान है, रसिक और शराबी । मटरू ख्वाजा उसकी नाक का वाल है । गियास मृगनयनी और लाखी को हस्तगत करना चाहता है । मटरू नटो से सम्पर्क स्थापित करना चाहता है । गियास की ओर से नटो को धन,बहुमूल्य वस्त्राभूषण इसी कार्य के लिए मिलते है । नटो के सुझाने पर गियास के चार सवार मृगनयनी और लाखी को पकडकर ले जाने के लिए राई तक आते है, पोटा उन दोनो को शिकार के लालच में उस दिशा मे भेज देता है जिधर सवार है । दो सवारो को वे दोनो मार डालती है, दो भाग जाते है । तब गियासुद्दीन नरवर पर आक्रमण करता है, वहाँ नटो के सहयोग से वह 'लाखी' और नरवर दोनो को हस्तगत करने का षडयन्त्र रचता है, पर लाखी की बुद्धिमता से नटो मे सबसे चतुर लडकी पिल्ली मर जाती है । षडयन्त्र विफल हो जाता है । गियासुद्दीन निराश माडू लौट आता है । इस घटना से मटरू का आदर कुछ ही कम होता है, कि वह नसीरुद्दीन से मेल बढाता है, खवासिन से मिलकर गियासुद्दीन को जहर दिलाता है। नसीरुद्दीन माडू का सुल्तान बनकर विलास-क्रीडा में मग्न हो जाता है,और क्रीडा-सरोवर मे डूबकर मर जाता है-नसीरुद्दीन का लडका उसी अवसर पर मटरू को समाप्त कर देता है-यानी इस प्रासगिक वस्तु को समाप्त कर देता है । यह प्रासगिक वस्तु है, प्रासगिक वस्तु मुख्य कथावस्तु से कभी कभी टकराती है, वैसे अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखती है ।

राजसिंह और उसकी कला की वस्तु इस उपन्यास की प्रतिवस्तु मानी जा सकती है । राजसिंह कछवाहा है और नरवर पर अपना अधिकार समझता है । उसका भाट उसे चैन नही लेने देता, उसे बराबर उकसाता है,नरवर को हस्तगत करने के लिए । राजसिंह चदेरी मे रहता है । पडौस की एक कला-प्रिय युवती कला को अपना प्रिय और विश्वासपात्र बनाता है, उसे और बैजू को वह ग्वालियर भेज देता है । कला वहाँ रह कर ग्वालियर के भवनो के चित्र छिपकर तैयार करती है और अनेक भेद सग्रह करती है । राजसिंह उधर गियासुद्दीन के आक्रमण का

लाभ उठाकर नरवर को हस्तगत करने की चेष्टा करता है, पर लाखी के कौशल और सहसा मानसिंह के पहुँच जाने से विफल होता है। सिकदर लोदी जब ग्वालियर पर आक्रमण करता है, तभी कला ग्वालियर छोडकर चदेरी जाने के लिए उत्सुक होती है, बैजू से भी कहती है। बैजू यह भेद मानसिंह पर प्रकट कर देता है, और कला को खाली हाथो चंदेरी लौटना पडता है। वहाँ उसे विदित होता है कि नसीरुद्दीन की स्त्री-लोलुपता का भय छाया हुआ है। उसे प्रतीत होता है कि राजसिंह उसकी रक्षा करने मे भी समर्थ नही है। सिकदर नरवर पर आक्रमण करके उसे जीत लेता है, राजसिंह उसकी सहायता करता है। सिकदर नरवर को, उसकी कला और मदिरो को पूर्णत नष्ट भ्रष्ट करके राजसिंह को सौंप जाता है। कला इस ध्वस को देखकर दुखित होती है, और उसे मानसिंह का स्मरण हो आता है, राजसिंह के प्रति किंचित घृणा भी उदय होती है।

'प्रतिवस्तु' की प्रासगिक वस्तु सिकदर लोदी का सूत्र है। सिकदर लोदी का दात ग्वालियर पर था, उसके पहिले आक्रमण के उपरान्त ही उपन्यास आरभ होता है। सिकदर का जासूस ही महात्मा बनकर राजा मान से किले की सुरग का पता जान लेता है। सिकदर ग्वालियर पर आक्रमण करता है, विफल होता है, इसी युद्ध मे लाखी और अटल मारे जाते हैं। सिकदर नरवर पर आक्रमण कर उसे ध्वस्त कर देता है और राजसिंह को सौप देता है।

यह प्रतिवस्तु की प्रासगिक वस्तु इसलिए है कि यह इसी वस्तु के अभिप्राय में सहायता पहुचाती है। यह इसकी सहायक वस्तु नही क्योंकि योजना और व्यवस्था से यह प्रतिवस्तु की सहायता नहीं करती, आकस्मिक रूप मे ही सहायक होती है, और उपन्यास मे केवल घटनात्मक महत्व रखती है, कथात्मक महत्त्व नहीं रखती।

गुजरात के नवाब बघर्रा की कहानी एक पताका अथवा ऐपीसोड (Episode) मात्र है।

यह है मृगनयनी की कथावस्तु का संक्षिप्त विश्लेषण।

वस्तु-संयोजना

उपन्यास के अध्ययन मे हमे केवल कथावस्तु का परिचय प्राप्त कर लेना ही पर्याप्त नही होता, उसके विधान की सयोजना को भी देखना होता है । वस्तु ही उपन्यास की कला का मेरुदण्ड होता है । वस्तु के विधान और सयोजन के सौष्ठव पर उपन्यास का सौष्ठव भी निर्भर करता है । ऊपर हमने जो मृगनयनी का विश्लेषण दिया है उससे एक बात यह स्पष्ट हो जाती है कि कथा-वस्तु मे दो पक्ष है । एक पक्ष मानसिंह का दूसरा उसके विरोधियो का । मानसिह-मृगनयनी तथा अटल और लाखी की कथावस्तु मानसिंह पक्ष की है, अत ये दोनो मुख्य वस्तु और सहायक वस्तु के रूप मे है । विरोधी पक्ष मे तीन या चार पक्ष है एक राजसिंह का, दूसरा गियासुद्दीन का , तीसरा सिकदर का, चौथा बघर्रा का । इन विरोधी पक्षो के दो भिन्न भिन्न उद्देश्य है— राजसिंह तथा सिकदर का शुद्ध राजनीतिक है राजसिंह नरवर पर अपना बपौती अधिकार पुन चाहता है, सिकदर ग्वालियर को पददलित देखने का आनद लेना चाहता है, क्योकि वह दिल्ली-सम्राट है । उधर गियासुद्दीन और बघर्रा मे लोलुपता भी है मृगनयनी और लाखी के लिए। गियासुद्दीन का तो लक्ष्य ही उन्हे प्राप्त करना है, यह लक्ष्य ही नरवर में उसकी चढाई का मुख्य आन्तरिक कारण है । इस दृष्टिकोण से गियासुद्दीन और उसके उत्तराधिकारी नासिरुद्दीन वाला कथा-सूत्र प्रतिवस्तु की कोटि मे जाना चाहिए, पर उसके विश्लेषण मे ऐसा नही किया गया । उसका कारण यह है कि गियासुद्दीन और नासिरुद्दीन का कथानक एक स्वतत्र महत्व प्राप्त कर लेता है । कथाविधान मे इस सूत्र अथवा वस्तु का उपयोग मुख्य कथा-वस्तु की प्रतियोगिता के लिए नही किया गया, वरन इसलिये किया गया है कि मुख्य कथा-वस्तु की प्रगति मे सहायता करे-इसे यो समझा जा सकता है—

गियासुद्दीन के कथासूत्र का मुख्य वस्तु और उसकी सहायक वस्तु मे सपर्क नटो के द्वारा ही होता है,गियासुद्दीन तो नटो मे ही नही मटरू मे भी पीछे आता है

"गियासुद्दीन मटरू नट मृगनयनी-लाखी ।"

इन नटों के द्वारा मृगनयनी तथा लाखी को माडू फुसला लेजाने का कार्य संपन्न कराने का तो लेखक का बहाना ही विदित होता है-क्योंकि–

१ मृगनयनी और लाखी के अपहरण का सर्वोत्तम समय अटल की अनुपस्थिति का समय था। लेखक चाहता तो जो सवार अटल के समय में उन्हें हरण करने के लिए आये, वे उसके आने से पहिले भी आ सकते थे, या अटल को ग्वालियर से लौटने में भी देर हो सकती थी, वस्तुत नटो का दल भी इन्हें फसाने मे कोई विशेष व्यग्र अथवा उद्योगशील नही दिखायी पडता।

२ लेखक के समक्ष एक प्रश्न था राजा मानसिंह को उसकी प्रतिष्ठा के साथ राई गाव मे किस प्रकार लेजाया जाय। राजा मानसिंह को बोधन के द्वारा दो निमंत्रण राई आने और लडकियो का शौर्य देखने के मिल चुके थे, पर अपनी व्यस्तता और गंभीरता के कारण उसने राई की ओर दृष्टि नही डाली। मानसिंह न तो गियास था, न बाबर। वह तो लेखक का एक आदर्श प्रस्तुत करने वाला पात्र है। अत जबतक कोई गंभीर कारण प्रस्तुत न हो तबतक दो छोकरियो के लिए राई गाव जाने की रसिकता वह नही दिखा सकता था, और उसने अपनी प्रतिष्ठा के अनुकूल वह दिखायी भी नही।

इसी कारण लेखक को राजनीतिक कारण और भय को घटना के माध्यम से प्रस्तुत करना पडा। गियासुद्दीन के आदमी आये-मृगनयनी और लाखी के हाथो दो मारे गये, दो भाग गये। इस प्रकार शत्रु के सिपाहियो का राज्य मे आना और ऐसी दुर्घटना होना प्रजा और राजा के लिए आतंक और आकर्षण की बात हो सकती है। अत मृगनयनी से प्रथम मिलन कराने के लिए गियासुद्दीन के कथासूत्र की माला ने सहायता पहुँचायी। इसी के लिए नटो को यहाँ प्रस्तुत किया गया। यो गियास के सिपाही बिना नटोके संकेत के भी मृगनयनी और लाखी के अपहरण के लिए आ सकते थे। इस कार्य के लिए नटो की आवश्यकता नही थी। नटो का वास्तविक उपयोग तो 'नरवर' के किले मे होना है। किन्तु नरवर, नट और लाखी-अटलका ऐसा संबंध अनायास तो नहीं किया जा सकता.अत लेखक ने बहुत पहिले ही गियास के सूत्र से संपर्क स्थापित कराके नटो को मृगनयनी और लाखी से मिला दिया। कथा-सूत्र के अतरंग अर्थ मे यह स्पष्ट है कि नटो

की पताका का संबंध उतना मृगनयनी से नहीं जितना लाखी और अटल से है। पर यहां भी नटोंका उपयोग गियास-पक्ष में न होकर मुख्य कथावस्तु के पक्ष में हुआ है। लाखी और मृगनयनी का संयुक्त कथा-सूत्र मृगनयनी के विवाह से छिन्न हो गया। मृगनयनी रानी होकर ग्वालियर गयी, लाखी-अटल प्रजा रहे, राई में। अब यह छिन्न सूत्र किस प्रकार मिलाया जाय? इस मिलन में यह भी ध्यान रखना होगा कि न तो लाखी-अटल का अपमान और तिरस्कार हो, न राजा-रानी का फूहड़पन विदित हो।

तभी लाखी-अटल समाज-विरोधी विवाह में प्रवृत्त होकर गांव छोड़ नटों के साथ मगरौनी गये, तभी गियाससुद्दीन का आक्रमण हुआ, तभी लाखी, अटल और नट नरवर में शरणार्थ गये, तभी लाखी ने नटों के भयानक षडयन्त्र को भंग किया। लाखी का यह राज्योपयोगी शौर्य और बुद्धि-प्रयोग वह कृत्य था जिससे राजा और लाखी-अटल की प्रतिष्ठा सुरक्षित रही।

इस कथन के मर्म की पुष्टि के लिए उपन्यास से दो उद्धरण लेने होंगे। एक है अटल-लाखी की राई छोड़ ग्वालियर अभियान के विषय में--

अटल ने बात करते हुए कहा--

"मैं आज ही गांव भर में कह दूंगा कि हम दोनों का व्याह हो गया है।"

"वे लोग मान जायगे?"

"न मानें! हम लोग अपना सामान लेकर ग्वालियर चल देंगे।"

"ग्वालियर नहीं जायेंगे"

"क्यों?"

"अपना निज का कुछ कर्तव्य कर दिखलायेंगे, तभी ग्वालियर जायेंगे।"

"मैं समझा नहीं।"

लाखी ने आद्योपान्त गांव के निन्दाचार को सुनाया। अन्त में कहा 'कोई तुमको यदि किसी की चेरी कहे, चाहे वह मेरी निज ननद ही क्यों न हो, तो मैं नहीं सह सकूंगी और न यह सह सकूंगी कि तुमको राजाका दास या रोटियारा

कहे । हमलोगो को भगवान ने भुजाओ मे बल दिया है और काम करने की लगन। कुछ करके ही ग्वालियर चलेंगे ।"

लाखी ने अपने कथन के अनुसार अपना निज करतब दिखाया और गौरव तथा गर्व के साथ ग्वालियर गयी ।

इतनी प्रतिष्ठा का और शौर्य-प्रदर्शन का कर्म करनेपर भी राजा ने लाखी का जो सम्मान किया उसके सबन्ध मे तमाशा देखनेवाली स्त्रियो ने जो बातें कही, वह दूसरा उद्धरण यह सकेत भर करता है कि यदि लाखी इतना करतब किये बिना ही चली जाती तो क्या होता, जबकि ऐसे अवसर पर भी वे कहती हैं–

"की तो लाखी ने बहादुरी । इतना तो कहना पडेगा ।"

'इतनी कि राजा घोडे पर और वह छोकरी हाथी पर ! पर हां रूप लुनाई है उसमें । तुमने लखा या नही, जब हाथी पर चढने को जाने लगी, तब कैसी आख उठाई थी राजा पर?'

'राजा उनको ग्वालियर ले जा कर महलो में डाल लेगा ।'

तो नटो और लाखी-अटल के सबध से एक ओर तो विच्छिन्न सूत्र को पुनः मिलाने का कार्य सपादित हुआ, और दूसरी ओर वह प्रतिष्ठा, गौरव और चमत्कार के साथ हुआ ।

इस दृष्टि से, इतने विचारोपरान्त यह स्पष्ट हो जाता है कि गियास का सूत्र यथार्थ में मुख्य वस्तु का प्रतियोगी नही, वह तो उसकी प्रगति में सहायक है, तभी उसे प्रासगिक वस्तु कहा जाता है ।

'प्रासगिक वस्तु' नाटकों में होती है । वहाँ मुख्य वस्तु में 'नायक-प्रतिनायक' दोनों का घनिष्ठ रूप से सबधित सूत्र ही मुख्य-कथा वस्तु अथवा आधिकारिक वस्तु कहलाती है-और इस आधिकारिक वस्तु के साथसाथ चलने वाली कुछ स्वतन्त्र और कुछ सलग्न और सहायक वस्तु 'प्रासंगिक वस्तु' कही जाती है ।

पर 'मृगनयनी' को समझने के लिए हमे वस्तु-विचार में कुछ स्वतन्त्रता से काम लेना आवश्यक हो गया है । कारण स्पष्ट है कि वर्माजी के इस उपन्यास

मे कथावस्तु का उद्देश्य सहज नही। कथावस्तु का उद्देश्य अवश्य होता है, उद्देश्य नही तो कथा का अर्थ अवश्य होता है। तभी हमारे आचार्यो ने 'अर्थ प्रकृतियो' का उल्लेख किया। कथावस्तु का उद्देश्य मुख्यत वही माना जाता है, जो अधिकारिक वस्तु का होता है-और यह या तो 'वस्तुमय' अथवा 'भावमय' होता है। यह 'वस्तु' अथवा 'भाव' पात्रो के उद्योग की दिशा का निर्णय भी करते हैं। इनकी उपलब्धि अथवा अनुपलब्धि के निश्चय होते ही कथावस्तु का कार्य समाप्त हो जाता है। प्रश्न यह है कि मृगनयनी की मूल आधिकारिक कथा-वस्तु का ऐसा क्या उद्देश्य है? आधिकारिक सपूर्ण वस्तु के,वस्तु-प्रतिवस्तु को मिलाकर, पाच पात्र ही प्रमुख माने जा सकते है-मानसिह, मृगनयनी, लाखी, अटल और राजसिह। ये क्या चाहते है? पहले पूछे मानसिह क्या चाहता है? मृगनयनी को? स्पष्ट है कि मानसिह मे मृगनयनी की चाह, उसे वस्तु के रूप मे या वस्तु के उद्देश्य के रूप मे प्राप्त करने की चाह कभी पैदा नही हुई, क्योकि 'चाह' वही है जिसके लिए उद्योग हो। मानसिह ने मृगनयनी को देखा और पा लिया। बस कथा समाप्त। स्पष्ट है कि मृगनयनी की कहानी 'मृगनयनी' को प्राप्त करने की कहानी नही है। न मृगनयनी के पक्ष मे मानसिह को प्राप्त करने की कहानी है। यदि ऐसा होता तो उपन्यास मृगनयनी के विवाह होते ही समाप्त हो जाता।

तो क्या उपन्यास लाखी के द्वारा अटल और अटल के द्वारा लाखी की प्राप्ति को उद्देश्य के रूप मे लेकर चला है। इस पक्ष मे सभावना और सार इसलिए प्रतीत होता है कि—

१ उपन्यास लाखी से आरभ होता है।
२ लेखक की दृष्टि मे लाखी का विकास मुख्य हो गया है।
३ लाखी में ही हमे कुछ कर्तव की झलक दीखती है।
४ अन्त भी लाखी के स्मरण मे होता है।
५ मृगनयनी के कथानक का उत्कर्ष उसके विवाह के साथ साथ समाप्त होता दीखता है, पर लाखी का वृत्त आगे चलता है,यह वृत्त मृगनयनी के साथ ही आरम्भ होकर मृगनयनी की कथा की ही नही उपन्यास की समाप्ति से कुछ पहले ही होता है।

६ मृगनयनी के मन में अपने संबंध मे, तो कोई चाह नही; परन्तु उसमें भी एक चाह है कि लाखी को भाभी बनायें। इसी के लिए वह लाखी-अटल को ढूंढकर उनका विवाह करती है।

७ लाखी के मन मे आरंभ से ही चाह है अटल के संबंध में।

८. केवल, अटल को लेकर लाखी और पिल्ली में ही कुछ संघर्ष का आभास मिलता है।

इस प्रकार लाखी-अटल का कथा-सूत्र कहीं कहीं तो मृगनयनी के कथा-सूत्र को भी धकेलकर प्रमुख होता दिखायी पड़ता है।

किन्तु इन समस्त तर्कनाओं से भी लाखी और अटल का कथा-सूत्र न तो उपन्यास की प्रधान वस्तु का सम्मान ग्रहण कर पाता है, न लाखी की चाह ही कोई महत्व पाने योग्य बन पाती है। कारण यह है कि लाखी और अटल मृगनयनी के उपग्रह से अधिक मूल्य उपन्यास की दृष्टि से नही रखते। उपन्यास का कौतूहल तो 'लाखी और अटल' में है, पर उनकी प्रेरणा और आत्मा मृगनयनी में है। लाखी और अटल के व्यक्तित्व में हमें लेखक का मन रमता हुआ तो दीखता है और उनमें उसे कुछ ऐसी बातें विदित होती हैं जिनके प्रति उसकी छिपी हुई हार्दिक सहानुभूति भी है, और जिनमें उसे उद्दाम शक्ति भी प्रतीत होती है; इसीलिए उसे, लाखी को विशेषत, और अटल को भी, सामान्यत, दबोचना पड़ा है, यदि मृगनयनी में उसके उद्देश्य की प्रेरणा गर्भित न होती तो वह संभवत. लाखी और अटलकी कथावस्तु को ही उपन्यास की आधिकारिक और प्रमुखवस्तु का स्थान देता और वह मृगनयनीपर उपन्यास न लिखकर 'लाखी' पर ही उपन्यास लिखता। ऐसा उसने नहीं किया। अत लाखी और अटलका कथा-सूत्र 'कौतूहल' की सामग्री से ही युक्त हो पाया है। प्रेरणा उसमें नही भर पायी, इसीलिए लेखकने 'लाखी' के चरित्र का ऐसा रूप प्रस्तुत किया है कि लाखी का व्यक्तित्व ही आरम्भसे अन्त तक पूर्ण सचित नहीं पा सका, आरम्भसे ही उसे मृगनयनी और अटल का आश्रित सा हो जाना पड़ा, बाद में उसे जाति-बहिष्कार के संकट के समक्ष भी कायर होना पड़ा, नरवरकी रक्षा करके भी उसे गौरव का अभिमान नही करने दिया गया, राजमहलमें पहुँचकर भी उसे अपना स्वतंत्र महत्व नहीं प्रतिपादन करने दिया गया। लाखी

के व्यक्तित्व को जिस हीन सभावना की भविष्यवाणी मृगनयनी के विवाह के अवसर पर कुढ़नेवाली स्त्री ने की थी,वह लाखी के व्यक्तित्व के लिये यथार्थ अभिशाप बन गयी और लाखी की लहलहाती भविष्य की स्वर्णलता झुलस कर दीन ही बनी रह गयी- उपन्यासकार ने लिखा है—

"वह स्त्री कहती गई-'एक कहती थी निपूती कि निन्नी रानी बनकर पान चबायेगी और लाखी चेरी बनकर निन्नी की पीक गदेली पर लेगी और राजा की सेज को बिछाया उठाया करेगी, सुन्दर सलोनी है न।"अत लाखी-अटल गौण रह गये-साले और सलहज ही।

अत. लाखी की चाह में उपन्यास का उद्देश्य स्पष्ट नहीं होता। अटल की प्राप्ति,अथवा अटल द्वारा लाखी की प्राप्ति से उपन्यास का अनिवार्य सबंध नही माना जा सकता। राजसिंह की 'चाह' नरवर प्राप्त करने की अवश्य है, पर वह एक व्यक्तिगत शौर्य की वस्तु है,राजसिंह में कर्तृत्व तो दीखता है,पर नायकत्व नही उदय हो पाता। इस प्रकार उपन्यास में वस्तुमय उद्देश्य मूर्तिमान नही होता मिलता। गियासुद्दीन-नासिरुद्दीन भी उद्देश्यहीन, बघर्रा का सूत्र भी औपचारिक उद्देश्य रहित, सिकदर का भी ऐसा ही है। इसका अभिप्राय यह नही कि ये उपन्यास के लिए उपयोगिताहीन भी है। तो 'वस्तुमय उद्देश्य' तो उपन्यास में दीखता नही इसीलिए उपन्यास साधारण दृष्टियो से नही देखा जा सकता।

उपन्यासकार रोमास लेखक है, रोमास लेखक रोमास का चित्र प्रस्तुत करता है, या कोई काव्यमय अनुभूति। मृगनयनी वर्माजी की किसी काव्यमय अनुभूति की अभिव्यक्ति है। अत इसके कथानक मे हमें आधिकारिक वस्तु के दो सूत्र मिलते है—

१ मुख्य-वस्तु
२ सहायक

यह सहायक वस्तु आदि से अन्त तक मुख्य कथावस्तु से घनिष्ठ रूप से सबंधित रहती है, और मुख्य कथावस्तु की पूर्ति करती है।

प्रासगिक वस्तु अपना पूर्णत स्वतत्र अस्तित्व रखती है, किन्तु मुख्य वस्तु के सूत्रो की प्रगति में कभी कभी सहायक होती है।

अधिकारी वस्तु के विरुद्ध खड़ी होने वाली वस्तु प्रतिवस्तु होगी। उसकी सहायक वस्तु सहायक प्रतिवस्तु कही जायगी।

इसके अतिरिक्त नाटकीय पताका की भांति कुछ छोटे कथासूत्र भी हैं। ये टूटने वाले तारो की भांति चमक कर अथवा रास्ते में से होकर बिना टकराये निकल जाते हैं।

इस प्रकार मृगनयनी में कथा-वस्तुओं का यह स्वरूप होता है—

मुख्य वस्तु:	मृगनयनी-मानसिंह	प्रतिवस्तु	राजसिंह-कला
सहायक वस्तु:	लाखी-अटल	सहायक प्रतिवस्तु	सिकंदर लोदी
प्रासंगिक वस्तु	गयासुद्दीन-नासिरुद्दीन	पताका	१ नट-कथा
			२ बघरी-वृत्त

इस उपन्यास में वस्तुत. कथा-विधान की दृष्टि से कोई नाटकीय संघर्ष नहीं प्रस्तुत होता, और न कोई ऐसा संघर्ष कथा-सूत्र का रूप ग्रहण कर पाता है।

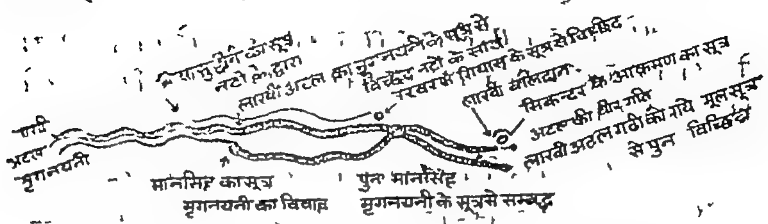
मृगनयनी पर दृष्टियां तो कई हैं पर संघर्ष किसी से कहीं भी नहीं। लाखी पर भी दृष्टियां तो हैं पर संघर्ष नहीं।

राजा मानसिंह का संघर्ष केवल नरवर के लिए है, वह भी कोई विशेष सूत्र का रूप नहीं ग्रहण कर पाता। केवल बैजू को मानसिंह के यहां भेजने में उनका आरम्भिक वृत्त सहायक होता है। अत यह भी केवल एक ऐपीसोड अथवा पताका का ही महत्त्व प्राप्त कर पाता है।

सिकन्दर और मानसिंह का कोई लक्ष्य विशेष नहीं, सिकंदर सम्राट होने के अहंकार से ग्वालियर पर कब्जा करना चाहता है, अत. बार बार चढ़ाई करता है। सिकन्दर, गियास तथा बघर्रा इन मध्ययुगीन सुल्तानों की मनोवृत्ति को चरितार्थ करने के लिए ही आक्रमण करते हैं, इन सूत्रों में कोई व्यवस्थित संघर्ष नहीं। अत ये भी पताका से अधिक नहीं।

हां अटल के लिए लाखी और पिल्ली में कुछ संघर्ष है। पर यह संघर्ष पिल्ली के समाप्त हो जाने पर गौण और क्षुद्र प्रतीत होने लगता है। इसका कोई आधार नहीं रहता केवल आभास रहता है।

मृगनयनी के समस्त कथा-विधान को इस रेखा चित्र से समझा जा सकता है।



इस चित्र से यह विदित होगा कि उपन्यास में कथा-प्रवाह एक प्रकार से सम-गति से प्रवाहित होता है, उसमें विषम-गति यथा सम्भव नहीं आ पाती। फल इसका यह होता है कि उपन्यास में चरम अथवा climax नहीं आ पाता। वस्तुतः यह चरम climax उन उपन्यासों में आ पाता है जिनमें संघर्ष होता है। इस उपन्यास में संघर्ष न होने के कारण उस चरम की आशा नहीं की जा सकती। संघर्षहीन उपन्यासों में घटनोत्कर्ष अथवा घटना-चमत्कार का आश्रय लेना पड़ता है।

एक दूसरी दृष्टि से मानसिंह के सूत्र की प्रतिवस्तु सिकंदर को माना जा सकता है। उपन्यास सिकंदर के आक्रमण के उपरांत ही आरम्भ होता है, और सिकन्दर के आक्रमण का भय निरंतर रहता है, निहालसिंह का वध सिकंदर के यहां ही हुआ। उपन्यास का अंत भी, सिकंदर के आक्रमण के उपरांत ही होता है। लाखी, अटल की मृत्यु इसी आक्रमण से होती है, नरवर भी सिकन्दर के आक्रमण से मानसिंह के हाथ से जाता है। किन्तु ये सब युक्तियाँ यथार्थ नहीं, सिकंदर नहीं उसका आक्रमण ही उपन्यास में महत्व रखता है, इस आक्रमण का स्वरूप उपन्यास में आर्य भूकम्प की ही भांति है। अतः उसे प्रतिवस्तु का रूप नहीं दिया जा सकता।

उपन्यास-विधान

मृगनयनी की दृष्टि से उपन्यास के दो भाग होते हैं--एक विवाह से पूर्व का, दूसरा विवाहोपरान्त का। विवाह से पूर्व मृगनयनी का उपन्यास-सूत्र घोंसले में पालित पक्षी के अंडे की भाँति है, लाखी और अटल के औपन्यासिक सूत्र के विकसित होने वाले तन्तुओं से आवेष्टित निन्नी अथवा मृगनयनी अपनी प्रभा प्रकाशित करती है। विवाह होने तक निन्नी में हमें कुछ विचार दृढ़ होते मिलते हैं।

१--"जहाँ भी रहूँ इस प्यारी नदी की दमकती हुई कल्लोलिनी धार को अपने पास में रक्खूँ। बाहर जाऊँ तो क्या इसको बाँध कर, समेटकर नहीं ले जाया जा सकता? ऊधती लहराती बालों को किसी कागज पर उतार लिया जाय। पहाड़ों की ऊँचाइयों को एक स्थल पर क्यों न इकट्ठा कर लूँ? बड़े बड़े पेड़ों के बन्दनवार बना लिए जायें और डालियों-पत्तों के साजों के झरोखे। उनमें से चाँदी की कड़ियों वाली लहरों को नाचता हुआ देखा जाय और फिर गाऊँ--जाग परी मैं पिय के जगाये-लहरें चाँदी और मोतियों के हार से पहने हुए उछलती हुई नाचती रहेंगी। बन्दनवार सदा हरे रहेंगे, पत्तों की झिलमिलियाँ निरंतर चाँदनी की भीगी हुई चमक और फूलों की महक से लदी रहेंगी।"

२-"राजा लोग अपने थोड़े से भाई बान्धवों को किसी गढ़में बन्द करके लड़ते लड़ते मर जाते हैं और उनकी स्त्रियाँ चिता में जलकर भस्म हो जाती हैं। क्या वे स्त्रियाँ तीर

होता,क्योंकि तब वह कुछ अन्य अविकसित तत्वों को व्यवस्थित कर सकता था। रोमास भी यहा तक ठीक रहती । किन्तु लेखक उपन्यास ही नही लिख रहा था, रोमास लिख रहा था, रोमास भी नही ऐतिहासिक रोमास ।

अत उपन्यास यहाँ समाप्त नही होता । दो सूत्र चलते है, एक पहिले से ही कथा-सूत्र मे सलग्न है, वह है बैजू बावरे का । यह यथार्थ में कोई सूत्र नही, पर लेखक को बैजू बावरा मे एक आकर्षण प्रतीत होता है । वह इसीलिए बैजू बावरा को कला के साथ ग्वालियर लाया है,और चदेरी के राजसिंह का एक हाथ ग्वालियर पहुँचाने की चेष्टा की है। पर कला का ग्वालियर आना ग्वालियर के हित मे ही विशेष हुआ है, राजसिंह के हित में नही। तो विवाहोपरात उपन्यास-विधान बैजूबावरा का पूर्ण उपयोग करता है-और बैजू बावरा, विजयजगम तथा कला के सहयोग मे राजा मानसिंह और मृगनयनी कला की नई उद्भावनाओ में दत्तचित्त होते है मानसिंह भवनो मे राई की प्राकृतिक गरिमा तथा बैजू के सगीत का समन्वय प्रस्तुत करने की चेष्टा करता है । मृगनयनी कला और विद्या मे निपुणता प्राप्त करती है,सपत्नियो के डाह और षडयत्र मे बचती हुई वह कला के साथ कर्तव्य की प्रेरणा का भी रूप ग्रहण करती जाती है ।

दूसरा सूत्र लाखी और अटल के परिणय के परिणाम स्वरूप आरभ होता है । समाज मे बहिष्कृत वे दोनो नटो के साथ मँगरौनी ज [illegible] रक्षा करते है, पिल्ली का अन्त होता है । लाखी और अटल ग्वालियर ले जाये जाते है । सिकदर के आक्रमण मे दोनो राई की गढी की रक्षा करते करते समाप्त हो जाते है ।

सिकदर के आक्रमण मे नरवर ग्वालियर के हाथो से निकल जाता है, वह राजसिंह को मिल जाता है । मृगनयनी अपने दोनो पुत्रो को वचित करके राज्य का युवराज बडी रानी सुमनमोहिनी के बडे पुत्र विक्रमादित्य को घोषित करती है । यहाँ उपन्यास समाप्त हो जाता है ।

लेखक माडू के सूत्रको और बढा लाया है । गियासुद्दीन की हत्या नासिरुद्दीन के द्वारा करना है और नासिरुद्दीन जलक्रीडा करता हुआ डूबकर मर जाता है ।

उपन्यास का प्रथम कथा-भाग जहाँ वस्तु की दृष्टि मे उद्योग और उपलब्धि का उपन्यास था, वहाँ दूसरा भाग अनुपलब्धि अथवा वैफल्य का । प्रथम भाग मे अधिकारिक वस्तु ने कुछ भी नही खोया,पाया ही है, दूसरे भाग मे मानसिंह के हाथ से नरवर गया, राजसिंह 'प्रतिवस्तु' का नायक सफल मनोरथ हुआ । अटल और लाखी मारे गये । मृगनयनी ने अपने पुत्रो को राज्य से वञ्चित किया । विजय जगम और वैजू के कला उत्कर्ष का अपमान जनता ने होलिकोत्सव मे भडौआ गाकर किया ।

यहाँ स्वभावत यह प्रश्न प्रस्तुत होता है कि उपन्यासकार क्यो आगे बढा? क्या उसका मृगनयनी के विवाह के उपरान्त उपन्यासको लेजाना अनिवार्य था? या इसमे उसका कोई और अभिप्राय था? दूसरा प्रश्न यह प्रस्तुत होता है कि उपन्यासकार ने जो स्वरूप अब रखा है,क्या उससे औपन्यासिकता और उपन्यास की रोचकता मे कोई व्याघात पडता है ?

उपन्यासकार क्यो आगे बढा? जैसा पहले कहा जा चुका है- उपन्यास 'वस्तु उपलब्धि' का नही । मृगनयनी की उपलब्धि तो राजा मानसिंह को होती है, और उपन्यास के आरम्भ से मृगनयनी की उपलब्धि तक लगभग आधा उपन्यास समाप्त भी होजाता है पर उसके लिये मानसिंह को क्या उद्योग करना पडता है? मृगनयनी को प्राप्त करने का उद्योग उपन्यास में कही भी नही मिलता । गियासुद्दीन का उद्योग भी यथार्थ में उद्योग नही वह तो मुख्य वस्तु की सहायता मात्र करता है । अत उपलब्धि की दृष्टि से उपन्यास विधान पर विचार नही किया जा सकता ।

एक दूसरा प्रश्न यह उठाना होगा । मानसिंह और मृगनयनी के कथासूत्र मे विजयजगम, बोधन और वैजू तथा कला को क्यो सम्मिलित किया गया है? ये पात्र वस्तुत न तो मृगनयनी कीप्राप्ति के सबध मे ही अनिवार्य है—विजयजगम, वैजू तथा कला का तो उसमें किंचित भी हाथ नही । बोधन का हाथ स्पष्ट दिखायी पडता है पर इसके लिए बोधन ही क्यो आवश्यक था? गियासुद्दीन को क्या बोधन ने ही सूचना दी थी? महमूद बघर्रा को क्या बोधन से ही समाचार मिला था। मृगनयनी को प्राप्त करने में बोधन का केवल इतना ही हाथ रहा कि उसने दोनो

का समाचार दिया और निमन्त्रण दिया। यह कोई भी जासूस या फरियादी कर सकता था, न इनके द्वारा कथा-प्रवाह में ही कोई सहयोग मिलता है। फिर ये उपन्यास-विधान मे क्यो सम्मिलित किये गये है ?

वर्माजी ने 'परिचय' में मृगनयनी सबधी सामग्री का उल्लेख किया है, उसमे उन्होने दो विशेष पैराग्राफ दिये है-जो इस प्रकार है-

"पृ० २- "ऐसे युग में, इतने सकेतो में भी मानसिंह हुआ। और, उसने तथा उसकी रानी मृगनयनी ने जो कुछ किया उसका प्रत्यक्ष प्रमाण आज भी हमारे सामने है ग्वालियर किले के भीतर मानमन्दिर और गूजरीमहल हिन्दू वास्तु-कला के अत्यन्त सुन्दर और मोहक प्रतीक है, तथा ध्रुवपद और धमार की गायकी और ग्वालियर का विद्यापीठ जिसके शिष्य, तानसेन थे, आज भी भारत भर में प्रसिद्ध है।"

"पृ० ३- मानमन्दिर और गूजरीमहल के सृजन की कल्पना को मृगनयनी से प्रेरणा मिली होगी। बैजनाथ नायक (बैजू बावरा) मानसिंह मृगनयनी के गायक थे। गूजरी टोडी, मगल गूजरी इत्यादि राग इसी मृगनयनी के नाम पर बने है।"

"जिन सम्मानित पाठिका ने मृगनयनी के कथानक पर उपन्यास लिखने का अनुरोध किया था उन्होने ठीक लिखा था कि मृगनयनी शौर्य और कला के लिये विख्यात थी।"

इन शब्दो में लेखक ने यह स्पष्ट कर दिया है कि मृगनयनी के व्यक्तित्व में उन्हे कुछ विशेषता प्रतीत हुई, उस विशेषता से वे प्रभावित हुए और उसे उपन्यास में मूर्तिमान करने के लिए सचेष्ट हुए। मृगनयनी के इस व्यक्तित्व में दो प्रधान तत्व है-१ शौर्य, तथा २ कला। शौर्य के प्रमाण लोकवार्त्ताओं में है, पर कला के प्रमाण तो स्थूल और मूर्त है। स्थापत्य में मान-मदिर और गूजरी के महल विद्यमान है, उनमे कला का अनोखा स्वरूप है। उसमे अपनी एक विशेपता है, इसकी मूल प्रेरणा कहाँ हो सकती है! इधर सगीत परपरा में गूजरीटोडी आदि रागनियों के प्रकार में भी गूजरी शब्द का प्रयोग क्या सकेत करता है ? स्पष्ट है कि गूजरी

मृगनयनी के लिए है, गूजरी का यह महत्व केवल रूप-सौदर्य एव शौर्य के कारण नहीं हो सकता। गूजरी मृगनयनी का भी योग इनकी प्रेरणा में रहा होगा। इसी प्रेरणा का स्वरूप स्थापित करना और शौर्य तथा कला का सयोग दिखाना उपन्यासकार का प्रधान अभिप्राय प्रकट होता है। यही कारण है कि उसने मृग-नयनी के व्यक्तित्व-निर्माण की मूल भूमि राई गाव मे पहाड, नदी, वन, मैदान खेत, पशु, मनुष्य सभी को जुटाते हुए मृगनयनी के शरीर और मन दोनो की प्रवृत्ति पर प्रकृति के प्रभाव की ओर सकेत किया है।

फलत उपन्यास व्यक्ति-चरित्र का नही 'व्यक्तितत्व' का उपन्यास है। व्यक्ति के चरित्र का स्पष्टीकरण एक उपन्यास में बिना मानसिक सघर्षो को प्रस्तुत किये सभव नही होता। अत. व्यक्ति-चरित्र-प्रधान उपन्यासो में मनोवैज्ञानिक आधारशिला पर प्रकृति, घटना और मानसके संघर्षों को प्रमुखता मिलती है-उसमें अर्थ अथवा वस्तु की प्राप्ति होजाने पर उपन्यास समाप्त समझा जा सकता है। पर व्यक्तित्व के उपन्यास में वह सघर्ष और उसका चरम महत्वहीन हो जाता है, महत्वपूर्ण होता है व्यक्तितत्व की पूर्ण उपलब्धि। मृगनयनी की उपलब्धि मानसिंह को, मानसिंह की उपलब्धि मृगनयनी को वस्तुत. क्या अर्थ रखते है? एक घटना से अधिक इनका कोई मूल्य नही। क्योकि दोनो का विवाह हो जाता है। एक दूसरे के शरीर की प्राप्ति हो जाती है, उनका जो अपना स्वरूप है, वह प्राप्त करना तो शेष रहता ही है, और विवाह से मिल जाने के उपरात उस स्वरूप की उपलब्धि का कार्य आरंभ होता है। यही कारण है कि मृगनयनी को प्राप्त कर जिस उपन्यास को समाप्त हो जाना चाहिये था, वह आधा ही हो पाता है-- मृगनयनी के शौर्य का स्वरूप ही वहाँ तक प्रत्यक्ष होता है--और इतने अश में मृगनयनी की शस्त्र-परीक्षा उसका चरम है, और राजा मानसिंह द्वारा वरण 'उनका पुन्नाग'---जंगल का पक्षी इस विवाह-बंधन से राजमहलो का बदी बना। उनका बहिर्गत जीवन समाप्त हुआ, और शौर्य ही की उद्दाम भावना अपनी स्वाभाविक गति में अवरोध पाकर भव्यता के प्रसाद से कलाओ की सर्जना में-अन्तर्गत जीवन में विकसित होने लगी। वस्तुत मानसिंह का व्यक्तितत्व मृगनयनी के व्यक्तितत्व को पूर्णत प्राप्त करने के लिए व्यग्र हो जाता है। कला

मे, चित्र में, संगीत में, स्थापत्य में मृगनयनी का व्यक्तित्व प्रेरणा की भांति व्याप्त होने लगा है, और उन्ही के द्वारा राजा मानसिंह उसे पूर्णत प्राप्त करता है। इसीलिए उपन्यास और आगे बढता है, तथा कला, बैजू और विजयजगम की उपयोगिता सिद्ध होती है। शौर्य और कला का सयोग एक तो मृगनयनी के व्यक्तित्व के द्वारा सिद्ध होता है—दो भागो में विभक्त होकर। विवाह के पूर्व शौर्य, उसके उपरांत कला मे। किंतु इसके समन्वय का एक रूप राजा मानसिंह में भी प्रस्तुत हुआ है-वह है समानान्तर धारा के रूप मे। शौर्य और कला साथ साथ बढते है-शौर्य का उपयोग रक्षा के लिए और कला का उपयोग भाव-सौष्ठव, कर्तव्य-बुद्धि और औचित्य की प्रेरणा के लिये। उपन्यासकार ने राजा मानसिंह के द्वारा राज्य के केवल दो कर्तव्य सुझाये है—

"राज्य है काहे के लिये? प्रजापालन, कला की रक्षा और बढोतरी के ही लिये न? प्रजा और कला, दोनो के लिये हमे अपने प्राण दे देने के लिये तैयार रहना चाहिए। इन दोनो की रक्षा का ही तो दूसरा नाम धर्म का पालन है।"

उपन्यासकार ने यद्यपि यहाँ यह स्पष्ट नही किया है कि कला की रक्षा और बढोतरी, धर्म क्यो है? फिर भी यह स्पष्ट है कि लेखक कला को प्रजापालन से कम महत्त्व कदापि नही देना चाहता, और इसे निर्विवाद स्वीकार करता है अथवा स्वीकार करा लेना चाहता है कि कला की रक्षा और बढोतरी भी उतना ही धर्म है जितना प्रजा पालन। अत दोनो में मे एक की भी क्षति किसी के द्वारा नहीं होनी चाहिये। इसी अभिप्राय से राजा मानसिंह ने आगे एक स्थानपर कहा है- "सचमुच वह कला क्या है जो कर्तव्य को लगडा कर दे, और वह कर्तव्य भी क्या जो कला का अगभग हो जाने दे।"

यद्यपि एक प्रसग मे उत्तेजित होकर मृगनयनी ने यह कहा था—

"वीणा को बजाते बजाते, काम पडने पर, यदि तुरन्त तलवार न उठ पायी, कोमल सेज पर सोते सोते, सकट आने पर, यदि तुरन्त ही उछलकर कमर न कसी, ध्रुवपद को गाते गाते शत्रु के सामने आ खडे होने पर यदि तुरन्त गरजकर चिनौती न दे पायी, जिन कानो मे मीठे स्वरो की रसधार बह रही थी, उन्ही

ध्रुवपद की तानों का काम ही क्या ? और इससे आगे राजा मानसिंह का निर्णय भी इन शब्दों में लेखक ने घोषित कराया है-

"पहले कर्त्तव्य, कला की बात पीछे" -

फिर भी राजा मानसिंह का यथार्थ निर्णय वह है जो आगे, और आगे जाकर प्रस्तुत होता है--वही निर्णय लेखक का भी निर्णय हो सकता है-

इसका प्रसग यह है कि मृगनयनी ने अपनी चित्रशाला मे एक चित्र बनाया है, जो दो भागो मे विभक्त है। एक ओर का चित्र 'कला-विलास' का दृश्य उसका प्रस्तुत करता है, दूसरी ओर का शत्रु-सकट का। बीच मे एक योद्धा है। असमजस मे, एक पग-रानी के कला-विलास मदिर की ओर बढा हुआ है, मुख शत्रु-सकट की ओर, तलवार आधी म्यान से बाहर। अभी चित्र की रेखाएँ ही प्रस्तुत की गयी है- रग नही भरा गया। मृगनयनी पूछती है.

"किस दिशा मे चित्र में रगो का भरना आरभ करु ?"

इसका उत्तर राजा मानसिंह ने अनायास ही दिया कि—

"दोनो में एक साथ रग भरो"

और इसके उपरान्त गभीर विचार करते करते वह इसी निष्कर्ष पर पहुँचा-"कला का अनुशीलन और कर्त्तव्य का पालन साथ-साथ चल सकते हैं। मै सेना को भी सजा दूगा और ललित कलाओ की भी उन्नति करता रहूगा मृगनयनी के अधूरे चित्र की दोनो दिशाओ में एक साथ ही रग भरे जा सकते है, उसने सोचा।"

यही भावना उपन्यास के अन्त मे मृगनयनी के मुख से भी निस्तृत हुई है:

"सकल्प और भावना जीवन-तराजू के दो पलडे है।"

"जिसको अधिक भार से लाद दीजिये वही नीचे चला जायगा।"

"सकल्प कर्त्तव्य है, और भावना कला। दोनो में समान समन्वय की आवश्यकता है।"

यह अभिप्राय का ऐक्य मृगनयनी के व्यक्तित्व के विकास के साथ सिद्ध हुआ है और उपन्यास का विधान हमें इसी व्यक्तित्व-विधान की दृष्टि से देखना होगा। यह विकास इस प्रकार है—

आरभ मे उपन्यासकार ने कर्तव्य की रूपरेखा औरपृष्ठभूमि का सकेत सिकदर के आक्रमणके उपरान्त की दशा तथा ऐतिहासिक अनिश्चित और सकटपूर्ण स्थिति का अकन करके दिया है,फिर मृगनयनी और लाखी तथा अटल राई के पालने में पलने-बढने दिखायी पड़ते हैं । लाखी और अटल के प्रेम की और शौर्य कीपृष्ठ-भूमि मे मृगनयनीवयस्क होती जारही है। राई के आसपास का प्राकृतिक अछूता सौन्दर्य मृगनयनी के मन में समाता जा रहा है, उस गाँव और गाँव के सौन्दर्य के प्रति उसकी आस्था बढती जारही है। फलत मृगनयनी के निर्माणमें तीन प्रेरणायें दिखायी पडती है

१. भाई का प्रेम-आध्यात्मिक

२ लाखी और अटल का प्रेम-सामाजिक और आध्यात्मिक

३ प्रकृति का प्रगाढ अछूता सौदर्य--स्थूल कायिक और मानसिक प्रेरणात्मक

इन सयोगो मे मृगनयनी मे शरीरके शौर्य का तो पूर्ण उदय राई मे ही हो उठता है,मन मे कला के बीजो का भी वपन प्राकृतिक सौन्दर्य की प्रेरणा और प्रेम की आध्यात्मिकता तथा सामाजिकता के कारण हो उठता है ।

तब उसका यश फैलता है । इधर उधर के सुल्तानो की दृष्टि उनकी ओर फिरती है, कुछ षडयत्र उन्हे हस्तगत करने चलते हैं-मृगनयनी स्वय ही उन्हें अनजान विफल करती हुई, शौर्य का परिचय और परीक्षा देकर राजा मानसिंह की हो जाती है ।

राजा मानसिंह में शौर्य है और कला-प्रेम । वे कवित्व को पत्थर में मूर्तिमान कर देने की भावना से अनुप्राणित हैं । वे भवन-निर्माण मे लगते है, और उसमे नये कला-अभिप्रायो को अकित करा रहे हैं-इनमें उन्हें मृगनयनी से प्रेरणा मिलती है । भवन-निर्माण का यह सूत्र उपन्यास के आरभ मे ही चल पडता है, मृगनयनी की प्रेरणा के द्वारा सशोधन हो नये रूप धारण करता हुआ मान-मदिर और गूजरी महल में पूर्ण और साकार हो जाता है । एक दिन मृगनयनी ने राजा मानसिंह को बताया –

"एक रात मेरे मन मे चाह उठी थी कि चाँदनी मे चमकती नदी की दमक
। समेट कर अचल मे बाध लू, खेती की ऊघती हुई वालो और पहाड की उस ऊचाई
। एक ही ठांर पर इकट्ठा कर लू, वडे-वडे पेडो के वन्दरवार वनाऊ और डालियो-
तो के झरोखे सजाऊ, उन झरोखो में होकर मोतियो के हार पहन हुए नदी की लहरो
। गीत सुनाऊ और फिर एक ऐसा घर वनाऊ जिसमें यह सव आ जाय।"

मृगनयनी की इसी कल्पना से अनुप्राणित होकर मानसिह ने भवन की अपनी कल्पना का स्वरूप यो प्रकट किया—

"भवन को सौन्दर्य, लालित्य और आस्था का मन्दिर वनाऊगा। कोमल भावनाओ का सदन, तुम्हारी चाह, शक्ति और वडप्पन का प्रतीक, कल्पना के वन्दरवार, ऊचे वृक्ष, पल्लवो के झरोखे, नदी की दमकती हुई लहरे, सवो को उसमे सजो दू गा। उस मदिर की प्रवल मजुलता आधी रात की चादनी में आकाश से गाकर कहेगी "जाग परी में पिया के जगाये।"

इस पर मृगनयनी को यह आपत्ति हुई

"पत्थर गावेंगे कैसे?"

और समाधान मानसिह ने दिया-

"जैसे तुम्हारे गाव के पेड, पहाड, खेत, उगती हुई वालें और चादनी में चमकती नदी की लहरें गाती हे।"

तो ऐसा कलापूर्ण भवन और ऐसा ही दूसरा गूजरी-महल दोनो तैयार हो गये और उनका प्रवेशोत्सव भी हो गया।

पर उपन्यास समाप्त नही हुआ। क्योकि मृगनयनी के व्यक्तित्व का सूत्र अभी पूर्ण नही हुआ था, अभी राजा मान मृगनयनी को कला में ही कुछ देख रहा था, अपने जीवन में उनके और कला के मर्म को यथार्थत नही पा सका था। यह तो राजा मान की कल्पना मृगनयनी से अनुप्राणित और अनुप्रेरित होकर पत्थरो में शिल्प के द्वारा अभिव्यक्त हुई थी, पर उधर मृगनयनी स्वय चित्र, नृत्य और गीत के द्वारा अपनी ही कलामय अभिव्यक्ति मे सलग्न थी, उसीमें से उसी की पूर्णता पर तो मृगनयनी की यथार्थ—उसके व्यक्तित्व की पूर्ण उपलब्धि संभव थी- तभी हम मृगनयनी को एक चित्र-रचना में व्यस्त पाते हे। यह चित्र ही मृगनयनी

के पूर्ण व्यक्तित्व का प्रतीक है-और वह चित्र तब पूर्ण होता है जब मृगनयनी एक पत्र द्वारा अपना यह निश्चय बता देती है कि बडी रानी सुमन मोहिनी के पुत्र विक्रमादित्य को राज्याधिकार मिलेगा, उसके अपने दोनो पुत्रो में से किसी को नही मिलेगा। यह समाचार मृगनयनी ने राजा मानसिह को अपनी चित्रशाला मे ही ला जाकर दिया-मानसिह की आखे सजल हो गयी। उसने पूछा-

'यह तुमने क्या किया?" मानसिह के कापते हुए होठो से धीरे से निकला। चित्र के 'कर्तव्य' वाले अङ्ग की ओर उँगली उठाती हुई वह बोली, 'यह'। इस प्रकार मृगनयनी ने 'कर्त्तव्य और 'कला' को सतुलन कर दिया। कर्त्तव्य उसके व्यवहार मे पूर्णत आप्त था और उसकी कला भित्ति पर सचित्र। कला ने कर्त्तव्य को उभारा था और कर्तव्य ने कला को प्रेरित किया इसे विचार करने के लिए छोड़ने से भी मृगनयनी ने लाखी के गले की मोती-माला स्मृति-रूप चित्र के कर्त्तव्यत के अग पर टाग दी थी।

इस गति मे उपन्यास का विधान अभिप्राय के ऐक्य को स्थापित करता है इसी के लिए मृगनयनी के विवाह के उपरान्त वह समाप्त नही होता।

किन्तु यहा एक नया प्रश्न सिर उठाता है कि यदि उपन्यास व्यक्तित्व का उपन्यास है तो अटल- लाखी, कला-राजसिह, गयासुद्दीन-मटरू, बघर्रा, तथा सिकदर आदि पताकाओ तथा कथासूत्रो का इसमे क्या हाथ है?

अटल-लाखी का कथा-सूत्र प्रेम-पवित्रता की शौर्य, कर्तव्य-निष्ठा, आत्म-सम्मान और बलिदान का सूत्र है। मृगनयनी के शौर्य और कला के उदात्त भावो को पुष्टि और रगीनी इसी सूत्र से मिलती है, मृगनयनी के अतरग का यह सूत्र बहिरग है।

कला-राजसिह का सूत्र मुख्य सूत्र के अभिप्राय निर्माण के लिए बैजू और कला जैसे दो कलाविदो को प्रदान करता है और यही सूत्र यह सिद्ध करता है कि मुख्य अभिप्राय मे हीन सूत्र की सफलता भी विफलता मे गयी बीती है। राजसिह को नरवर मिला, पर क्या उस प्राप्ति को सफलता कहा जा सकता है? वह सफलता मानसिह की विफलता से भी गर्हित प्रतीत होती है, और उससे मुख्य कथासूत्र की प्रतिष्ठा में कोई भी कमी नही आती।

लेखक ने राजसिंह के इस नरवर के अधिकार के उपरान्त का वृत्त दिया है-उसका एक भाग दृष्टव्य है। राजा मानसिंह ने नरवर को प्राप्त करने के बाद कला को भी बुला लिया।

राजसिंह ने अपनी बडी सम्पदा को घुमा-घुमाकर दिखाया।

जब वे दोनो किले के उस खड मे पहुचे जिसमे दूर दूर तक मूर्तियो के टुकडे और चूरे पडे थे, तब कला चौंकी।

उसने पूछा, 'यह क्या?'

राजसिंह ने सिकदर के विनाश-कार्य का सक्षेप मे वर्णन किया। उसको लगा जैसे खडित मूर्तिया चुपचाप कोस-कोस कर कह रही है, तुमने हमको क्यो नही बचाया? कला की आखो में आसू आ गये। गद्गद् स्वर में बोली। यह सब आपने क्यो होने दिया? कैसे होने दिया?

राजसिंह सकपका गया।

× × ×

"मैं यहा कभी नही आऊगी। मैं नही जानती थी, कभी नही सोचा था।" नष्ट हो जाने पर भी उन मूर्ति-खडो मे शान्ति थी-बिखरी हुई शान्ति। कला भ्रष्ट भी हो जाय, योगी पतित भी हो जाय, तो भी उसमें बड़प्पन का कुछ अश रहता ही है, कला सोचती हुई उसके साथ चली गयी।"

इस प्रकार राजसिंह के कथासूत्र का स्वर विषम होते हुए भी मुख्य वस्तु के अभिप्राय को साधने के लिए है, मुख्य-अभिप्राय से विरुद्ध वस्तु का स्वरूप कुछ होगा ही।

गयासुद्दीन-नासिरुद्दीन का कथा-सूत्र एक स्वतत्र कथा-सूत्र है। इसके भी दो भाग है—एक गयासुद्दीन-मटरू का, दूसरा नासिरुद्दीन-मटरू का। गयासुद्दीन मटरू का सूत्र मुख्य कथा-वस्तु से दो स्थानो पर सपर्क करता है, पर दोनो ही स्थानो पर नटो के माध्यम द्वारा। इन्हे हम देख चुके है। यह सूत्र और बघर्रा का पतला-सा सूत्र मूल कथा-वस्तु की पृष्ठभूमि है—जीवन का भोगान्तवादी विकृत विलास-कातर स्वरूप इसमें दिया गया है। राजसिंह-कला का कथा-सूत्र अद्भुत-

दर्गी अधिकार-हठ पर आरूढ किन्तु दुर्बल महत्वाकांक्षी व्यक्तित्व का सूत्र था, पर गियासुद्दीन-नासिरुद्दीन-मटरू का कथासूत्र लालसा का, इन्द्रियरति मात्र का सूत्र था, इसीलिए इसे लेखक ने स्वतंत्र स्थान भी दिया है, बघर्रा का एक विशेष व्यक्तित्व इस काल के इतिहास का कराल व्यक्तित्व था, उसे भी लेखक ने स्थान दिया। इन दोनों की पृष्ठभूमि के ऊपर मृगनयनी-राजा मानसिंह-अटल-लाखी के सूत्र का अभिप्राय खरा निखरता दिखायी पड़ता है।

इस व्याख्या के उपरान्त अब निम्न चित्र से इस उपन्यास का सपूर्ण विधान समझा जा सकता है। समस्त कथा में प्राय सात स्थान आये है अथवा उनसे संबंधित सूत्र आये हैं। ये हैं, चित्र मे क्रमश १-ग्वालियर, २-राई ३-माडू, ४-चदेरी, ५-नरवर ६-मालवा ७-दिल्ली-आगरा।

१- ग्वालियर का सूत्र राजा मानसिंह-विजयजगम-बैजू-निहालसिंह-कला का सूत्र है २६ वे अध्याय तक, इसके उपरान्त मृगनयनी, अटल और लाखी का भी।

२- राई का सूत्र है पहल मृगनयनी, अटल, लाखी, बोधन का, फिर अटल, लाखी का ही।

३- माडू का सूत्र है गियासुद्दीन-मटरू-नासिरुद्दीन-मटरू का

४- चदेरी का सूत्र है कला - राजसिह का

५- नरवर का सूत्र है लाखी-अटल तथा मानसिह का—अत में राजसिंह-कला का

६- मालवा का सूत्र है बघर्रा का

७- दिल्ली आगरे का सूत्र स्थानीय सूत्र न होकर सुल्तान सिकदर लोदी का है

उपन्यास के किस अध्याय मे किस सूत्र का वृत्त है यह चित्र मे बिन्दु से दिखाया गया है। इस विधि से एक दृष्टि मे यह देखा जा सकता है कि मुख्य कथा-वस्तु से कब कब लेखक विरक्त हुआ है—और तब ऊपर के विवेचन से उसे मिलाकर उपन्यास का सपूर्ण विधान हृदयगम किया जा सकता है।

एक बात यहा अनायास ही उदय होती है—वह यह कि लेखक सगीत कला से कुछ इतना आकृष्ट हुआ है कि उसके उपन्यास मे स्थान और कथासूत्र के सात ही ग्राम बनते है, जिनमे बघर्रा का स्वर निश्चय ही 'गाधार' है।

अध्याय ५

कथा-विधान में त्रुटि

उपन्यास मे कई प्रकार की त्रुटिया हो सकती है। एक तो उपन्यास में ग्रथन की त्रुटि हो सकती है। कथा के सूत्र ऐसे चलें कि उनकी ठीक शृंखला न बने, उपन्यास का रूप ठीक खड़ा न हो सके। इसका एक कारण तो यह हो सकता है कि कथासूत्र स्वतंत्र और शिथिल हो, मुख्य कथानक को सहायता या तो बहुत कम देते हो, या बिल्कुल ही न देते हो। इस उपन्यास मे गियासुद्दीन-नासिरुद्दीन का कथानक कुछ ऐसा ही है। यह प्राय उपन्यास के आरंभ में ही चलता है और अन्त तक ही चलता है, उपन्यास समाप्ति से कुछ पूर्व ही इसका अन्त होता है। इसके दो भाग है गियासुद्दीन संबधी, और नासिरुद्दीन संबधी। गियासुद्दीन को हम मृगनयनी के लिए कुछ उद्योग करते पाते हैं, वह नरवर पर भी आक्रमण करता है, और जैसा ऊपर बताया जा चुका है, इस प्रकार गियासुद्दीन का सूत्र मुख्य सूत्र को विच्छिन्न होने से रोक देता है। पहले उद्योग की प्रतिक्रिया मे मानसिंह राई गया और मृगनयनी उसकी हो गयी। दूसरे के फलस्वरूप मृगनयनी से बिछड़े लाखी-अटल फिर उससे मिल सके। किन्तु नासिरुद्दीन वाला सूत्र मुख्य कथानक मे कही भी सीधे संपर्क मे नहीं आता। लाखी की समरूपता के कारण कला के संकट की सम्भावना उनमे अवश्य पैदा होती है, पर उसमे कथासूत्र को कोई सहायता नहीं मिलती।

वर्मा का सूत्र तो और भी अनावश्यक किन्तु उपन्यास के संपूर्ण विधान की दृष्टि से ये दोष नही माने जायेंगे। इनसे ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तो तत्पर हुई ही है, मुख्य अभिप्राय से भिन्न और विरोधी अभिप्राय का स्वरूप भी खड़ा हो सका है, तथा ऐतिहासिकता की छाप गहरी होती गयी है। इनके वर्णनों मे कुछ 'अद्भुत' भी है जो पाठक

के लिये आकर्षण प्रस्तुत करता है—और रोमासो मे कुछ न कुछ अद्भुत का समावेश किसी न किसी प्रणाली से होना ही चाहिए।

दूसरा कारण यह हो सकता है कि उपन्यासकार किसी ऐसे कथासूत्र को अधिक महत्व अथवा आकर्षण प्रदान कर दे कि मुख्य वस्तु हतप्रभ प्रतीत होने लगे। इस उपन्यास मे जैसा इंगित किया जा चुका है अटल-लाखी का वृत्त औपन्यासिक स्वरूप के अधिक निकट जा पहुचता है, उसमें एक सफल कहानी के सभी तत्व है।

जैसे १ प्रेम का उदय और पुष्टि है—लाखी और अटल में।

२ प्रेम का प्रतियोगी भी है—पिल्ली में—अत प्रेम का त्रिकोण स्थापित होता है।

३. प्रतियोगियो में संघर्ष है—लाखी और पिल्ली मे।

४. सामाजिक संघर्ष है—बोधन, समाज तथा लाखी-अटल मे।

५. प्रतिपक्षी संघर्ष में पूर्ण सफल होता दिखायी पडता है—पिल्ली गियासुद्दीन-मटरू के साथ षडयन्त्र रच के रात को नरवर से भाग कर लाखी को गियासुद्दीन के सुपुर्द कर देना चाहती है, इस प्रकार अपने और अटल के मार्ग का काटा दूर कर देना चाहती है।

६. चरम है—रस्सी पर चढकर-नटदल उतर रहा है, लाखी और अटल उतरेगे ही, पर अनायास ही लाखी रस्सी काट देती है, पिल्ली खाई मे गिर कर समाप्त हो जाती है। हारी बाजी जीत ली जाती है।

इनके उपरान्त भी लाखी और अटल का शौर्य तथा बलिदान मृगनयनी और मानसिंह के कथासूत्र को क्षुब्ध करते प्रतीत होते है, ऐसे वर्णन से विदित यह होता है कि लेखक का मन मृगनयनी पर उपन्यास लिखने का नहीं था, लाखी-अटल पर वह लिखना चाहता था।

पर ऐसा नही जैसा इसके पहले अध्याय में बताया जा चुका है, घटनाओ और उनके वैलक्षण्य मे कथा-सूत्रो का मूल्य इस उपन्यास में नही आँका जा सकता।

इसी कथासूत्र मे एक और च्युति दिख यी पडती है, लेखक ने लाखी को नट विद्या, विशपत रस्सी पर चलने के अभ्यास मे प्रवृत्त और कुशलता प्राप्त करते चित्रित किया है। क्यो ? यह अनुमान किया जा सकता है कि पहली कल्पना मे लेखक लाखी के द्वारा नरवर के घेरे के अवसर पर पत्रादि ले जाने का कार्य कराना चाहता था, वाद मे उसने अपना वह विचार बदल दिया। उपन्यासकार क्यो लाखी को नटकला सिखाने में इतना समय व्यर्थ नष्ट करा सका।

तीसरा कारण हो सकता है कथा-प्रवाह के उचित उत्थान का अभाव। कथा का गठन ऐसा होना चाहिए कि उत्तरोत्तर कथा-सूत्रो के ज्ञान मे कथा का उत्कर्ष वढे और औत्सुक्य तथा रुचि मे उत्थान होता जाय।

इस उपन्यास मे घटनाओ के तारतम्य में न तो कोई Suspense विक्षोभ है, न रहस्य है, न गूढता न घटाटोप है, न विच्छेद है। एक के उपरान्त एक घटना सहज भाव मे आती चली जाती है, वह घटना वहुधा कथा सूत्र का अन्त नही होती उसमे किसी वहाने पिरोयी गयी होती है। मृगनयनी के शौर्य की घटनाय, किसी सुअर को मारना, किसी अरने को मारना, सूअर को पीठ पर लाद लाना, कुओ की सफाई-मुथरायी, वैजूवावरे का गायन, कला का नृत्य, भवन का निर्माण, मानसिंह का मजदूर के यहा चक्की पीसना, लाखी की नानी की मृत्यु, कला का षडयन्त्र, आदि आदि, इसी प्रकार निहालसिंह और वोधन का वध। इन्हे वस्तुत घटना कहा भी जा सकता है क्या ? औपन्यासिक घटनाये तो तीन ही दिखायी पडती है: सिपाहियो का मारना, लाखी का कटारी घाट पर पिल्ली को मार डालना, तथा गढी पर शत्रुओ को मारते हुए लाखी का पलायन।

- उपन्यास में आये विविध पात्रो का उपन्यासकार कैसा उपयोग करता है यह एक महत्वपूर्ण बात होती है। प्रत्येक कार्य प्रत्येक पात्र नही कर सकता।

पात्र के स्वभाव के अनुकूल ही उसका कार्य होना चाहिए । अथवा प्रत्येक कार्य के लिए उचित कारण हो सकना चाहिए । ऐसे अनौचित्य इस उपन्यास में कहीं कहीं दृष्टिगोचर होते है । मृगनयनी का सुमनमोहिनी के आभूषण को छिपा देना । लेखक मनोविश्लेषण का ज्ञाता है उसके आभूषण को मृग-नयनी की मनोवस्था के प्रतीक के रूप मे उसने प्रस्तुत किया है, पर उस छिपाव के दिखाने न दिखाने से कोई हानि अथवा बाधा नही थी । न तो मृगनयनी का चरित्र इतना दिव्य है कि उसको मानवीय धरातल पर लाने के लिए उसके द्वारा कोई अशोभनीय काम कराया जाय । बैजूबावरा के द्वारा कला के षडयन्त्र का भण्डाफोड समुचित नही माना जा सकता ।

इसी प्रकार जिन घटनाओ का यथार्थ प्रभाव पडना चाहिए उनका वैसा प्रभाव न पडना भी उपन्यास को शिथिल बनाता है । सिकन्दर द्वारा निहालसिह का वध तथा बोधन पुजारी का वध किसी भी प्रकार का यथार्थ प्रभाव नही डालते । केवल इतना उल्लेख उपन्यास मे उस वीर की मृत्यु की प्रतिक्रिया का मिलता है—

"किसी ने सभा भवन मे समाचार दिया था—"निहालसिह को मार डाला गया । सिकन्दर लोदी ने खिलत और घोडे भेजे है । परन्तु वह ग्वालियर पर फिर चढाई करने वाला है ।"

सभा भवन मे सन्नाटा छा गया ।

मानसिंह भभक उठा । भर्राये हुए स्वर मे बोला, दूत का वध कर दिया गया । सौगात जले पर नमक छिड़कने के समान है । इसका बदला लिया जायगा ।"—इसके बाद लेखक ने तुरन्त ध्यान सभा-भवन से ऊपर उठा कर मृगनयनी के पास पहुंचा दिया है, जो सुमन मोहिनी के व्यंग से खिन्न कर वहा से उठ जाती है । इसके उपरान्त वह बैजू के द्वारा कला के रहस्योद्घाटन मे प्रवृत्त हो गया है । बाद में कही कही बहुत ही गौण स्मरण उनका हो आता है ।

जिस प्रकार रस के परिपाक में पडने वाली बाधायें दोष मानी जाती है, उसी प्रकार किसी वर्णन मे भी इनके मुख्य विषय से भिन्न स्वरो

की गूज उठाना दोष माना जा सकता है। सभा में जिस समय राज-काज के महत्व का प्रतिभास होता है अथवा सगीत की प्रतियोगिता का गभीर वातावरण स्पष्ट होता है तभी ऊपर श्रवणार्थ और दर्शनार्थ आयी हुई राजरानियो में सपत्नि ईर्ष्या और डाह के दावपेच चलते दिखायी पडते हैं। कला के ऐसे पावन समारोह के अवसरो को ही उपन्यास कार ने ऐसे विषय के लिए क्यो चुना ? क्या इसलिए कि ये रानिया और किसी अवसर पर एक स्थान पर एकत्र नही हो सकती थीं या इसलिए कि साधारण भारतीय नारियो का स्वभाव ही ऐसा होता है कि जब कही एकत्र होती है तो ऐमी ही बातें करती हैं। किन्तु जहाँ इससे भारतीय नारियों की स्वाभाविकता का पता चलता है वही मृगनयनी के मूल्याकन में धक्का भी लगता है और औपन्यासिक रसोपलब्धि अथवा प्रभाव में बाधा भी पडती है।



अध्याय ६

शौर्य और कला का स्वरूप

मृगनयनी मे शौर्य और कला दोनो के समन्वय की चर्चा ऊपर हो चुकी है। इस अध्याय में हम इसे और भी भली भांति देख लेना चाहते हैं। शौर्य क्या है? नारी और शौर्य का कैसा समन्वय उपन्यासकार चाहता है? फिर कला क्या है? उसे वह किस रूप में ग्रहण करता है? इसका समन्वय कैसा हुआ है?

शौर्य क्या है?

शौर्य का अर्थ शूरवीरता होता है। वस्तुत शूरता व्यक्तिगत गुण है और वीरता उसकी अभिव्यक्ति, किन्तु शौर्य में दोनो ही एक साथ समाविष्ट हैं। अत शौर्य के लिए शारीरिक बल, और उसकी अभिव्यक्ति दोनो ही चाहिए।

व्यक्तिगत शरीर-निर्माण मृगनयनी का कैसा था उपन्यासकार ने इसके भी हमें दर्शन करा दिये हैं।

मृगनयनी और लाखी दोनो ही पन्द्रह सोलह वर्ष की थी। मृगनयनी बलिष्ठ और पुष्ट काया की, लाखी दुबली और छोटी। यह तो लेखक की अपनी व्याख्या है, किन्तु स्नान करते समय लाखी ने देखा निन्नी की गोरी देह बहुत पुष्ट है। यह ऐसा क्या खाती होगी, लाखी सोचने लगी।

किन्तु लाखी और मृगनयनी दोनो की बलिष्ठता दोनो ही स्थल-स्थल पर प्रकट करती हैं। दौज के दिन वे दोनो फिर परस्पर होली मिलने में जुट गयीं, और एक दूसरे से उलझ गयी,. तब निन्नी ने कहा—"तुम बहुत तगडी हो, हाथ ऐसे हैं जैसे महुए की डालें, पर मैं भी किसी तरह पार पा ही गयी। होस होतो फिर आओ।" इस पर लाखी ने मृगनयनी की भुजाओं की प्रशंसा करते हुए कहा —

"मेरी बाहें यदि महुए के पेड की डालें है तो तुम्हारी साँप की रस्सी जैसी हैं। हे भगवान कैसी कस जाती हैं। इन दोनो की उपमाओ के भेद से" दोनो के शरीर-सौन्दर्य का भेद भी प्रकट हो जाता है। एक तगडी भी है और कठोर भी है—लाखी ऐसी ही है। दूसरी मृगनयनी बलिष्ठ भी है, पर साथ ही कोमल और स्निग्ध भी। आगे शिकार के लिए वन में घूमती हुई मृगनयनी के और लाखी के अँगो की ओर भी झाकी लेखक ने करायी है।

"दोनो ने अपने लहगो को घुटनो के ऊपर समेट कर कसकर फेटा बाधा। दोनो की गोरी-गोरी जाँघें आधी उघड गयी। लाखी की पतली सुती हुई सी थी और निन्नी की मासल पट्ठो वाली जैसे बैठकें लगाने वाले किसी पहलवान की हो।"

किन्तु पैरो और जाघो से ही शरीर की बलिष्ठता नही विदित हो सकती, विशेषकर स्त्री की। उसके उरोजो की उपेक्षा नही की जा सकती, इसीलिए लेखक ने ऐसा स्थल प्रस्तुत किया है जहाँ उन्हें रेगने की आवश्यकता पडी है। जगलो और पहाडो मे ऐसे स्थल आ ही जाते हैं—अत यह अवतरण लेखक ने दिया —

"वे दोनो कही बैठ-बैठ कर और कही लेट-लेट कर रेंगने लगी। ऊँची छातियाँ पत्थरो और करधई के मोटे काँटो से टकरा-टकरा जा रही थी, परन्तु मानो उनमें पत्थरो और काँटो से भी लड जाने की दम हो।"

इस वर्णन में लेखक की एक सावधानी दृष्टव्य है। उसने 'ऊँची छातियाँ' शब्द का प्रयोग किया है, उरोज अथवा कुच' जैसे शब्द नही लिखे। शौर्य मे छाती ही उपयुक्त शब्द होता है। उरोज और कुच शृंगार-रस से मलिन हो चुके है। किन्तु लेखक तो उस समय के उनके समस्त शरीर की अस्त-व्यस्त दशा का चित्र दे रहा है —

"करधई की टेढी-मेढी डाले सिर से बाधी हुई ओढनी में अटक-अटक जा रही थी। गोरी-सलोनी भुजाओ में काँटे खरोंचे कर-कर रक्त की पतली लीकें निकाल रहे थे, धूल और धूप उनको सुखाकर मरहम का सा काम कर रही थी . बिना तेल के लम्बे-काले केश कुन्तलो में आँधी के एक-दो झोको ने ही धूल और करधई के छोटे-छोटे सूखे पत्ते भर दिये।"

इस वर्णन से उनके शारीरिक सौंदर्य और पुष्टता का ही ज्ञान नही होता उनकी सहिष्णुता और लगन का भी पता चलता है। उनके सौंदर्य और बल पर ग्रामीण तथा दरिद्रता-द्योतक भूषा के आवरण ने और भी रंग चढा दिया है।

ऐसे शरीरवाले व्यक्तित्व के शौर्य का प्रदर्शन अथवा अभिव्यक्ति भी असाधारण ही है, एक ही तीर मे अनेक सूअरो तथा शेरो को समाप्त कर देती है। मृगनयनी के बल का तो ठिकाना ही नही, सूअर को पीठ पर लादकर जंगल से घर ले आयी। ये सब ऐसे शौर्य की बातें थी जो पुरुषो के लिए भी दुर्लभ थी, स्त्रियो मे तो इसे आश्चर्य ही माना जायगा। ऐसा ही माना भी गया। उनके सम्बन्ध मे समाचार सुनकर यह धारणा बनी कि अप्सराये उनकी लुनाई के सामने कुछ नही। परिया उनकी खूबसूरती के सामने नाक रगडती है—पर लगालगाकर बात फैली। बडे घराने की हिंदू स्त्री तो घूघट डालकर भीतर बैठना और कुसमय आने पर चिता में जलकर खाक हो जाना ही जानती है। ये दोनो अवश्य ही इन्द्र के अखाडे से नीचे उतर आयी। तभी तो शेर, तेंदुये, सुअर और अरने भैंसे को बास के तीर से नीचे गिराती है। नटो को भी आश्चर्य होता है—और अब लाखी और निन्नी उनके समक्ष एक-एक सूअर को टागे आ खडी होती है तो "पोटा आतंकित हुआ और अर्धेडिन भी कुछ डिग गयी पिल्ली ने उनके रूप मे साकार भीमता देखी।"

यो तो शिकार के सभी वर्णनो मे एक आकर्षण है पर राजा मानसिंह के समक्ष उस शौर्य की पूरी कडी परीक्षा हुई है। नाहर को एक ही बाण मे मारना तो बडा काम था ही, पर उससे वे संकट में नही थी, संकट का सामना तो अरने के कारण करना पडा। यह संकट इसलिए और भी बढ गया कि तीर, बर्छी, छुरे सभी उस पर चलाये जा चुके थे, इन्हें खाकर लडखडाता हुआ भी वह मृगनयनी और लाखी को पीस देने की सामर्थ्य रखता था। ऐसे अवसरो पर ही तत्पर-बुद्धि और शक्ति की यथार्थ परीक्षा होती है—उपन्यासकार ने लिखा है—"निन्नी को केवल एक उपाय सूझा। उसने उछलकर अपनी ओर वाले एक सीग को दोनो हाथो मे पकडकर अरने को प्रचण्ड वेग के साथ धक्का दिया। अरना मुड गया और धम्म से गिर गया। निन्नी भी उसके सीग को पकडे हुए उस पर गिरी, परन्तु सभल गई।"

मृगनयनी राजा मानसिंह को इसका स्पष्ट उत्तर देती है —

"और हमारे चलाये तीरों की सनसनाहट क्या आपकी भुजाओं को कम फड़कन देगी" तो प्रश्न का स्वरूप यह हो गया कि स्त्रियों की सौन्दर्य-श्री की महलों में अभिराम व्यंजना ही अधिक प्राणप्रद और शक्तिदाता हो सकती है, या उनकी अपनी शूरवीरता भी उनके पतियों को कोई प्रेरणा दे सकती है। राजा मानसिंह का कलाप्रिय हृदय यद्यपि स्त्रियों को महलों में ही, युद्ध में बिना प्रवृत्त हुए, थके क्षणों में अपने पतियों का मनोरंजन कर उन्हें सशक्त करने के मत को ही मान्यता देता है, पर मृगनयनी के शब्द बहुत दृढ़ता पूर्वक कहे गये हैं, और अन्तिम निर्णय की भांति यह प्रकट करते हैं कि नहीं, यदि स्त्रियां युद्ध में प्रवृत्त हों तो उनके पतियों को विशेष प्रोत्साहन मिलेगा।

इन दोनों के अतिरिक्त ग्राम-निवासी स्त्री-पुरुष भी हैं, वे भी इस विषय में अपना मत रखते हैं— लेखक ने बताया है कि मृगनयनी और लाखी के संबंध राई गांव की —

"स्त्रियाँ चाहती थीं, दोनों कहीं टल जायँ तो अच्छा। सब सोचते थे, पागल हो गई हैं—बिल्कुल गोंड भीलनी, नहीं तो क्या ऊंची जाति की लड़कियों में ऐसे कुलक्षण होते हैं।"

स्त्रियों के सम्बन्ध में ऐसी धारणायें अन्य पुरुषों की भी हैं, तभी तो वे मृगनयनी और लाखी के शौर्य को आश्चर्य की बात समझते हैं।

इस शौर्य के ही सम्बन्ध में एक बात हमें और दृष्टिगोचर होती है। मृगनयनी का यही शौर्य विवाहोपरान्त कला और उसकी प्रेरणाओं में परिणति पा लेता है पर मृगनयनी की शिष्या लाखी में वह अवसरों पर यथार्थत प्रकट होता है, और अपनी उपयोगिता सिद्ध करता है। यह शौर्य मृगनयनी में कर्तव्य की रीढ़ बनता है, जिस पर कला की लता चढ़कर फलना-फूलना चाहती है। यह शौर्य फलत कला का मेरुदण्ड है। जिस प्रकार अनिंद्य अलौकिक सौन्दर्य से अभिमंडित शौर्य-प्रतिमा विधाता ने मृगनयनी बनायी, उसी प्रकार इस उपन्यासकार ने अपने उपन्यास मृगनयनी में शौर्य को कला-सौन्दर्य और अभिरामता से व्याप्त करके उपन्यास का 'मृगनयनी' नाम सार्थक कर दिया है।

ऊपर हम लिख आये हैं कि यह उपन्यासकार कला को कला के ही लिए स्वीकार करने को कभी प्रस्तुत नही रहा, उसने शिव का समावेश आवश्यक माना है। इस उपन्यास में उपन्यासकार हमें उपन्यास-कला का ही नही, वास्तविक कलाओं का भी साक्षात्कार कराता है। वे कलाए हैं स्थापत्य, चित्र, सगीत तथा नृत्य कला।

पहले हमे यह देखना है कि कला की परिभाषा क्या की गयी है। यह वस्तुत एक जटिल प्रश्न है, और कला की कोई पारिभाषिक परिभाषा इस उपन्यासकार ने नही की है, कला के रूप उसने खडे करने की पूर्ण चेष्टा की है, उन रूपों को हृदयगम कराता हुआ वह केवल उपन्यास के अन्त मे ही 'कला' की परिभाषा की ओर कुछ इगित कर सका है—उसने परिभाषा-स्वरूप इतना ही लिखा है कि—

"भावना कला है।" यह परिभाषा उसने कला और कर्तव्य का पार्थक्य और सम्बन्ध दिखाने के लिये दी। उसका पूर्ण वाक्य यह है—'संकल्प कर्तव्य है और भावना कला" कर्तव्य और कला में समन्वय की स्थापना को सिद्ध करते हुए भी उपन्यासकार इन दोनो के पारस्परिक विरोध से भी निरतर आशंकित रहा है। उसने कला को भावना मानते हुए कुछ पहले और कहा है। यह उसने मृगनयनी के शब्दों में कहा है—"परन्तु महाराज, कला कर्त्तव्य को सजग किये रहे, भावना विवेक को सबल दिये रहे, मनोबल और धारणा एक दूसरे का हाथ पकडे रहें।" विरोध की आशका से समन्वय ही नही सहयोग की प्रेरणा देते हुए उपन्यासकार ने कला को 'भावना' ही माना है। वस्तुत कला को 'भावना' मानना, कला का केवल मानसिक पक्ष प्रस्तुत करना है। भावना तो मनुष्य के मनोजगत की वस्तु है, वह मनुष्य में कितनी ही बनी रहे, कला की सज्ञा नही पा सकती। यह भावना जब व्यक्त होती है तभी कला कही जा सकती है, तो क्या भावना की प्रत्येक अभिव्यक्ति ही कला है। उपन्यासकार ने एक अन्य स्थान पर मृगनयनी से एक व्याख्या दिलायी है, प्रसंग होली के उत्सव का है—

"भिन्न भिन्न प्रकार के बीभत्स रूपों मे सैनिक बौखला रहे थे। कुछ गधों पर सवार थे। एक सवार हाथ में फूटे तूम्बे पर फटे बास की डांडी

को खोसे हुए विजय की वीणा का स्वाँग कर रहा था । दूसरा बैजू के गायन का ।"

इस दृश्य से मानसिंह को बहुत क्षोभ हुआ । उसने खीझ प्रकट करते हुए मृगनयनी से कहा, "इतना मतवाला ! मान-मन्दिर की विशालता और सुन्दरता का इनके मन पर कुछ भी प्रभाव नही पडा । नायक बैजू और आचार्य विजय की नकल उतारी इन अभागो ने !!! और वह भी किले के भीतर और तुम्हारे महल के निकट !!!!

ऐसा क्यो हुआ इसीकी व्याख्या करते हुए मृगनयनी ने बताया है –

'इधर कलाओ की वृद्धि हुई है, उधर बाण-विद्या और युद्ध-विद्या का अभ्यास कम हो गया है । अपने सैनिक किसान घरो से आये है । हमारी कला उनके विवेक में नही बैठी, इसलिये अपनी जानी पहचानी को ले उठ और हमारी कला की दिल्लगी उडाने लगे । हम कलाओ को अधिक समय देंगे तो वे अवसर पाते ही अपनी वासनाओ पर उतर-उतर आयेंगे" ।

मृगनयनी का यह कथन बहुत सारगर्भित है । इससे कई प्रश्न खडे होते है । एक तो यह कि क्या 'कला' की कोटिया होती है ? । उपन्यासकार ने स्वीकार किया है 'हा' । वह भी इन्ही उपरोक्त पक्तियो में । उसने दो कोटिया यहा स्वीकार की है–एक 'हमारी कला' यानी मृगनयनी, मानसिंह, विजय जगम, बैजू बावरा तथा कला की कला । यह समस्त वर्ग आधुनिक वर्ग-विभाजन मे क्या नाम पायेगा । स्पष्ट है कि यह कला 'सामन्तशाही' कला कही जायगी । दूसरी कला है 'सैनिको-किसानो' की 'अपनी जानी पहचानी' । इस कला का क्या नाम वर्ग-विभेद से होगा ? "लोक-कला" यह तो ऊपर से देखने पर ही भेद प्रतीत होता है । वस्तुत उपन्यासकार 'सामन्तशाही तथा लोक कला' के भेद को 'कला' की दृष्टि से स्वीकार नही करता । उसने मृगनयनी से ही उपरोक्त वक्तव्य में इसी की व्याख्या में जो अंतिम वाक्य कहलवाया है वह बताता है कि उनकी 'अपनी जानी पहचानी' वस्तु कला नही यानी भावना नही है, 'वासना' है । इस प्रकार मानवीय अभिव्यक्तियो की दो कोटिया मानसिक स्तर पर उसने दिखायी है–एक है भावना की अभिव्यक्ति यही कला है, दूसरी है 'वासना' की अभिव्यक्ति–इसे

उसने 'कला' का नाम नहीं दिया है। तब प्रश्न यह है कि 'भावना' और 'वासना' में क्या अन्तर है? मृगनयनी के शब्दों से तो कुछ ऐसा झलकता है कि भावना को यदि अधिक समय दिया जायगा तो वह अवसर पाकर वही किन्हीं व्यक्तियों में 'वासना' उत्पन्न करेगी। इस वाक्य में कला, कलाकार और पात्र का भेद स्वीकार किया गया है। कला अर्थात भावना कलाकार के द्वारा प्रस्तुत होगी तो उसको ग्रहण करने वाले दो प्रकार के व्यक्ति होंगे—एक मृगनयनी मानसिंह की कोटि के, दूसरे सैनिक-किसान आदि। इस पात्रता-भेद का रहस्य क्या है? लेखक ने इसका कहीं स्पष्ट उल्लेख नहीं किया किन्तु संकेत अवश्य दिये हैं—उन्होंने संगीत विद्यालय स्थापित करने की घोषणा की, क्योंकि उन्होंने अनुभव किया कि यह पात्र-भेद संस्कार हीन होने के कारण हुआ है। वस्तुत जो पात्रता का अंतर हुआ है वह वर्ग भेद के कारण नहीं संस्कार हीनता के कारण हुआ है। किन्तु प्रश्न यह है कि कला की उपासना में संस्कार-हीन भी वासना पर क्यों उतर आयेंगे? पात्रता-भेद और संस्कार-हीनता तो उसका पूरा कारण नहीं हो सकते-एक स्थान पर विजय जंगम ने महाराज को यह चेतावनी दी है

"महाराज, धनुषों की प्रत्यञ्चा का निरीक्षण करिये, बाणों की नोकें टटोलिये, कहीं मोचरी तो नहीं पड़ गई है। वीणा के वाद्य की ध्वनि और आचार्य बैजनाथ की तानों की झाईं सैनिकों के कान में भी पड़ेगी फिर वे कल कूच करने की तैयारी न करके किसी न किसी बाजे को लेकर अपने राजा का अनुकरण करेंगे।"

केवल सैनिकों और संस्कारहीनों पर ही कला का कोई अनिष्ट प्रभाव पड़ता है, ऐसा नहीं। एक दूसरे स्थान पर मृगनयनी स्वयं मानसिंह की 'दास' विषयक मनोवृत्ति का विश्लेषण करती है। भवन के निर्माण का ही प्रसंग है। भवन का शीघ्र निर्माण करा डालने के लिए मानसिंह व्यग्र है। तभी वह कहता है —

'चाहता हूँ तुर्कों की बला किसी तरह टले जाय तो बिना विलम्ब मैं भवन को बनवाकर खड़ा कर लूं, बैजू के द्वारा संगीत में नया प्राण

फूंक दूँ, चित्रकारी, साहित्य इत्यादि को पूरी ऊंचाई पर पहुंचा दूँ।" और राजा इसके निमित्त सोना, चाँदी देकर दाम-नीति से भी तुर्कों की बला टालने को तय्यार है क्योंकि राजनीति के चारो अंगो में 'दाम' भी है—तभी मृगनयनी कहती है —

"कलाओ की बहुत अधिक पूजा ने ही क्या आपके ध्यान को राजनीति के दाम वाले अंग पर अधिक जा बिठलाया है ? दण्ड की बात आप क्यो नही सोच रहे है ?"

इन प्रसंगो मे यह निर्विवाद है कि लेखक "कला" की अति सेवा को हानिकर प्रभाव डालने वाली मानता है, स्वयं कला सेवी पर भी उसका प्रभाव ठीक नही पड़ता, और साधारण अथवा संस्कारहीन जन पर भी शुभ प्रभाव नही पड़ता। क्यो ऐसा होता है ? इसका कोई स्पष्ट कारण लेखक ने नहीं बताया। कला-कर्तव्य मे समन्वय और सामंजस्य स्थापित करने के प्रयत्न मे ही कला और कर्तव्य के मौलिक संघर्ष का भाव उसने स्वीकार कर लिया है। भावना और संकल्प अथवा विवेक के इस संघर्ष के माने यह है कि कभी भावना प्रबल होकर मनुष्य को विवेकहीन और कर्तव्य-विमूढ बना सकता है, कभी विवेक भावना को वश कर सकता है। यह आशंका समस्त उपन्यास मे व्याप्त है। मानसिक क्षेत्र मे इन दोनो की यह प्रतियोगी सत्ता भी उक्त विकार का कारण हो सकती है। राजा मानसिंह में लक्ष्य में आनेवाली दुर्बलता का कारण यही है। किन्तु यही कारण संस्कारहीनो के लिए नही। वहाँ भावना और वासना के सम्बन्धो पर विचार करना आवश्यक होगा। वस्तुतः 'वासना' का प्रयोग उपन्यासकार ने उस दार्शनिक अर्थ मे नही किया जिसमें गीता आदि मे हुआ है। वहाँ पर 'वासना' का अभिप्राय उस लहक से है जो विषयो के नष्ट हो जाने और इन्द्रियो के शिथिल हो जाने पर भी बनी रहती है। लेखक 'वासना' को असंस्कृत ऐन्द्रिक लिप्सा अथवा लिप्तता ही मानता प्रतीत होता है। मनुष्य की अभिव्यक्तियो के दो रूप हो जाते है—एक असंस्कृत नितान्त प्राकृतिक, घोर ऐन्द्रिक। दूसरा संस्कृत। मनुष्य की प्रत्येक अभिव्यक्ति के ये दो रूप मिलते है। संस्कृत रूप ही कलाओ की

आधार-भूमि है, असंस्कृत रूप में कलाओं का बीज मात्र होता है। असंस्कृत रूप ही 'वासना' है। यही भव्य (Sublimale) परिमार्जित और संस्कृत होकर 'भावना' अथवा कला का रूप ग्रहण करती है।

संस्कार की भावना मे सौन्दर्यान्वेषण तथा सौन्दर्योपलब्धि का उद्योग निरंतर विद्यमान है। यह सौन्दर्य ही वासना के चांचल्य को स्थिरता देता है, यह सौन्दर्य ही उसे भव्यता प्रदान करता है। सौन्दर्य की भावना का स्रोत है 'प्रकृति'—मृगनयनी ने प्रकृति को देखा, उसमें प्रकृति के दृश्य के मनोरम चित्र अंकित हुए, वे भवन-निर्माण की कला-कृतियों के लिए प्रेरणा बने। सौन्दर्य मे महानता है और पवित्रता है। मान-मंदिर के निर्माण की कल्पना से पुलकित होकर मृगनयनी विचार कर रही है —

"मै रहूंगी, उसमें एक कक्ष मे लाखी रहेगी, सुमनमोहिनी भी आया करेगी और छींटे भी कसा करेगी। कसने दो। मै कान बहिरे कर लूंगी, अनसुनी करती रहूंगी, तब क्या करेगी वह? परन्तु उसकी आंखें! और वह उपहास! असह्य हो जाता है। सहूंगी। ऐसा सुन्दर मन्दिर बनेगा वह और हम सब उसमें ओछे बनकर रहेंगे।"

कला की इस पावन और महत् प्रेरणा ने मृगनयनी मे और भी पावनता भर दी तभी तो उसे अपनी पिछली भूल का स्मरण हो आया और अपमान की भावना का तिरस्कार करते हुए भी उसने सुमनमोहिनी का वह आभूषण जो वह एक दिन उठा लायी थी और आले में फेंक कर भूल गयी थी, उसे लौटा दिया, मानसिंह के सावधान करने पर भी। कला की पावन प्रेरणा से आत्मा को जो बल मिलता है, वह किसी भी क्षुद्रता को कैसे रहने दे सकता है! यह आभूषण सम्बन्धी औपन्यासिक प्रकरी कला के इसी महत्व का प्रतिपादन करने के लिए उपन्यास मे अवतीर्ण की गयी है, अन्यथा उसका कोई महत्व नहीं, कला और मानव-कल्याण के इसी भाव को मानसिंह ने भी व्यक्त किया है। मानसिंह विजय जंगम से कह रहे हैं —

"आपही तो बतलाते रहते हैं कि जीवन को कल्याणमय और सुन्दर बनाने से ही मृत्यु भी शुभ बन सकती है, मैं जीवन के उसी भाव को पत्थरों में उतार देना चाहता हूं।"

कला का यह कल्याणकारी स्वरूप आ कैसे पाता है। निश्चय ही तपस्या और लगन की इसके लिए आवश्यकता है। मानसिंह मृगनयनी को बता रहे है —

"कलाकार क भीतर पूरी उपासना, आस्था, श्रद्धा और भक्ति, योग के द्वारा जा पड, तभी वह उस वरद् मुस्कान को टाकी हथौडे के द्वारा पत्थर में उकसाकर पिरो सकता है।"

यह कलाकार की योग्यता केवल शिल्प के लिए ही नहीं, प्रत्येक कला के लिए आवश्यक है। वस्तुत जब तक तपस्या का अभाव रहता है कला की अभिव्यक्ति 'सुन्दर' की भावना को नही, सुन्दर की वासना को ही प्रकट कर सकती है।

लेखक यह मानता है कि कला की इस अभिव्यक्ति का कलाकार की भावना के अभिप्रायो मे सम्बन्ध हो जाता है, ये अभिप्राय उसे अपने क्षेत्र और परम्परा में मिलते हैं। इनमे विकास हो सकता है, नवीन प्रादुर्भाव भी हो सकते है, पर उनपर साम्प्रदायिक सकोच का लाछन नही लगाया जा सकता—माडू की मस्जिद के निर्माण के समय काज़ी ने आकर गयामुद्दीन से यह शिकायत की कि "जहापनाह, कारीगरो ने मस्जिद के सदर दरवाजे पर बाजू के लिये जो पत्थर तैयार किये है उनमे बेलबूटी, पत्तियो और फूलो की पच्चीकारी के साथ चिडिया और बन्दरो की मूरते नक्श करदी है। गुवजो की खिडकिया बडेरीदार बनायी है, जिसमें हिंदुओ के मन्दिरो जैसे बन्दरवार रख दिये है . जालिया, झरोखे उनके ऊपर के कगूरे मन्दिरो के जैसे रच डाले है। कगूरो को साधने के लिये मोर और घोडो के सिर वाले पत्थर बनाये है।"

इस पर सुल्तान ने कहा —

"कारीगरो ने जो कुछ पुराने ज़मानो से कारीगरी के रिवाज में सीखा है, उसी को पेश कर रहे है।"—आगे —

"अपने मन के सलोनेपन के तकाज़े से कैसे लड जायें वे गरीब ?" आदि

कला और उसके सौंदर्य से मानसिंह ही नही, गयामुद्दीन और बघर्रा भी अभिभूत होते है। बघर्रा ने मन मे कहा है—"पहाडो, पेडो, फूल-पत्तियो, कोयल की कूको और परियो की लोच-लचको को जैसे एक साथ इन मन्दिरो के बनाव

सिगार में टाकी और हथौडे से मचल-मचल कर उतार दिया है। मैं तो देखकर दग-सा खडा रह गया था और बुत भी बे-पनाह खूबसूरती के। चाहता था उन बुतो को वैसे ही निगलकर पेट के किसी कोने में रक्खे रहू।"

इससे सिद्ध है कि कला का प्रभाव तो असाम्प्रदायिक और उदार है। उसमें शैली भेद कारीगरो के क्षेत्र और परम्परा के कारण होता है। इस शैली भेद का उल्लेख केवल मस्जिद-मदिर के प्रश्न को लेकर भारत और ईरान के भेद से ही नही हुआ, भारत मे भी शैली-भेद का स्पष्ट सकेत हैं। यह सकेत हमें मान-मदिर के ऊपरीखड के स्वरूप-निर्माण के विषय में होने वाली बहस में मिलता है। आचार्य जगम का सुझाव है कि तैलग-शैली में बनवाया जाय। वे उसकी विस्तृत व्याख्या भी करते हैं।

इन शैलियो के अभिप्रायो का क्षेत्र से ही सबध नही उस भावना से भी है जिसमें कला के महत को कलाकार किसी गाथा का रूप देकर उत्कीर्ण करता है। भावना के लिए उचित प्रतीको (Symbols) की परिकल्पना भी करता है। इन भावनाओ के कारण ही कोई कला मे 'शिव' को उतार रहा है तो कोई विष्णु को। जब इन दो भावनाओ वाले मिलकर रचना करेंगे तो कला का मिश्र रूप प्रस्तुत होगा। ग्वालियर के तैलग-मंदिर मे यह मिश्रण दिखायी पडता है। वर्माजी की कला का सम्मान विष्णु की ओर होते हुए भी वे उसकी पृष्ठभूमि में 'शिव' का भाव भी चाहते हैं, इसीलिए 'विशालता' का सयोजन भी उन्होंने कला मे कराया है।

उपन्यास के अध्ययन से यह स्पष्ट विदित होता है कि यो तो उपन्यासकार ने सगीत, नृत्य, चित्र, मूर्ति आदि सभी कलाओ का अच्छा वर्णन किया है, फिर भी स्थापत्य और मूर्ति-शिल्प की ओर उसका विशेष आकर्षण है। वह सगीत को भी पत्थरो मे ढाल देने के लिए आरभ मे ही व्यग्र है, और हमें यह भी विदित हो जाता है कि वह इसमे सफल भी हो गया है। यह सूचना हमें बैजू बावरे के एक प्रसंग मे ही मिलती है। बैजू किसी नयी तर्ज के अनुसधान में थे। यत्न किया कई बार विफल हुए तब—

'वीणा को एक तरफ रखकर झरोखे से मान-मदिर की एक ओर को देखने लगा। कगूरो के नीचे पत्थरो मे बनी हुई बन्दन वारों की चमेठी और

मुरकी हुई वेलो के बीच में चौकोर झिझरिया और सूड़ उठाये हुए हाथी पर रिपटी हुई रविरश्मियो पर आख जम गई। एकाध क्षण पीछे पत्थरो की जालियों में बने पुष्पो और हसो पर जा अटकी।"

"अरे! यह मदिर भी टोडी की इसी तान को ले रहा है। वीणा पर तान और गमक अब यो निकल आवेगी।" वह उल्लास के साथ बोला।

स्थापत्य तथा मूर्ति-शिल्पा का वर्णन उन्होने बडे मनोयोग से किया है, चित्र तथा नृत्य को उन्होंने केवल मृगनयनी के साथ ही दिखाया है। चित्र-कला के वर्णन में उपन्यासकार कोई विशेषता नही ला सका है। कला और कर्तव्य के द्वन्द को ही उसके द्वारा दिखाने की चेष्टा की गयी है, कला का सौष्ठव दिखाने की ओर उसका ध्यान नही, पर नृत्यके वर्णन में स्थापत्य और मूर्ति-शिल्पकी भाति ही उपन्यासकार की लेखनी ने विस्तार देकर विशदता लाने की चेष्टा नही की, वरन कला के मर्म को भी प्रकट करने का प्रयास किया है। मृगनयनी के ताडव नृत्य द्वारा भावो के उत्कर्ष और उत्थानकी सभावना भी दिखायी गयी है, और मुग्धता तथा सौन्दर्य के गौरव का भी उल्लेख हुआ है।

उपन्यासकार ने शौर्य और कला को एक सूत्र में गूथ कर उपन्यास में रुमानी वातावरण पैदा करने मे और भी सफलता प्राप्त की है। इस विधि से उसने मान-सिक भोजन भी दिया है।

कला और शौर्य के इस समन्वय के साथ कर्तव्य और कला का सघर्ष दिखाया है, जिसपर हम कुछ ऊपर विचार कर चुके है। इस युग में राजा के लिये कर्तव्य था 'युद्ध'- अत कर्तव्य और कला का द्वन्द 'युद्ध' और 'कला' का द्वन्द है। उसमे 'समताल' रखने का सुझाव देते हुए भी, उपन्यासकार का मन शस्त्र अथवा युद्ध की ओर विशेष झुक गया है, शास्त्र अथवा कला की ओर उसका भाव गौण होना दिखायी पडता है।

कला की इतनी प्रतिष्ठा करते हुए, कला को पावन भावो का उद्रेक करने वाली सिद्ध करते हुए, कला [illegible] कर्तव्य-प्रेरक शक्ति को भी सिद्ध करते हुए, उनमें होने वाली हानि और कर्तव्य शिथिलता की आशका भी जहाँ, उसने पद पद पर दिखायी है, वहाँ एक क्षेत्रमे कला की असमर्थता भी प्रकट की है, असमर्थता ही

नही उसकी व्यर्थता भी दिखायी है। यह प्रसंग मृगनयनी के एक चिंतन में उपस्थित हुआ है।

"मृगनयनी ने सोचा, इस नये सुन्दर मंदिर को भी यदि किसी दिन किसी ने आकर फोड दिया तो क्या फिर एक और नया मंदिर बनाया जावेगा? कब तक यह क्रम जारी रहेगा? इसके भक्तो की बाहो में जब तक बल नही आया तब तक यही क्रम रहेगा। किसान जब तक प्रबल नही हुए तब तक बराबर यही होता रहना है। किसान कैसे प्रबल बनें? कलाओ की शिक्षा से? ऊँह! उससे इनकी बाहो को कितना बल मिलेगा? पेट भर खाने को मिले, दूध, मट्ठा घी, कपडे और कुछ इनके पास बचता भी रहे। तब कलायें इनके बाहुबल को स्थिरता दे सकेंगी? यह सब कैसे हो? राजा सेना को पुष्ट करले तो इस काम के करने के लिये कहूगी।"

इन विचारो से स्पष्ट है कि कला न तो पेट भर भोजन दिला सकती है, न बाहुबल बढा सकती है, न देश की रक्षा कर सकती है, वह केवल प्रेरणा और पवित्रता प्रदान कर सकती है। जीवन के कल्याण का सदेश भी सम्भवतः कला में है यह कल्याण उतना भौतिक पक्ष से सबध नही रखता जितना आध्यात्मिकता से प्रेरणा और भावना का सबंध कर्तव्य और मानव की महत्ता से अवश्य है।

अध्याय ७

वर्माजी की उपन्यास-कला के प्रतिबन्ध-

वर्माजी के इस द्वितीय चरण में उपन्यासो से उनकी कला की कुछ सीमायें इष्टिगत होती हैं। उपन्यास-लेखन की साधारणत दो मुख्य प्रणालिया मानी जा सकती है। एक प्रणाली पाश्चात्य के अनुकरण में समृद्ध हुई है। उपन्यास वस्तुत पूरी तरह पश्चिम की देन है। यह नया रूप पश्चिम साहित्य से ही लिया गया है, अत उस साहित्य में व्याप्त अन्तर्भावना यदि हमारे उपन्यासो में भी विद्यमान मिले तो आश्चर्य नही। पाश्चात्य उपन्यासो का मूल तत्व 'संघर्ष' है। दो पक्ष उपन्यास में स्पष्ट हो जाते हैं, किसी वस्तु के लिए परस्पर प्रवृत्त होते हैं। बहुधा इस सघर्ष का मूल प्रेम होता है। पाश्चात्य सघर्ष-सस्कृति में प्रेम का स्वरूप भारतीय स्वरूप से सर्वथा भिन्न है। वहाँ प्रेम के लिए प्रतिद्वन्द्विता हो सकती है, तभी सघर्ष भी। इसीलिए पाश्चात्य कला में इस सघर्ष को महत्त्व दिया गया है।

दूसरी प्रणाली भारत में ही विकसित हुई माननी होगी। वह भारतीय नाटकीयशैली के आधार पर खडी होती विदित होरही है। भारतीय नाटको का सिद्धान्त सघर्ष नही 'विकास' है। विकास मे भारतीय शास्त्रियो ने वृक्ष के विकास का रूप सामने रखा है। 'बीज वपन' से , फलागम' तक उनके शास्त्रो में मिलता है। इस विकास के भारतीय परपरा में भी कई रूप हो गये है।

एक शकुन्तला के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इसमें प्रेम ही मुख्य-सूत्र है। दो प्रेमी मिलते है--उनका वियोग होता है। वियोग बडा दीर्घ हो जाता है, उसमें एक प्रेमी की कठोरता की अति हो जाती है, उसे जब किसी घटनावश स्मरण होता है, तब वह विकल है और अनायास ही अपने प्रिय को पा लेता है।

दूसरा मुद्राराक्षस के द्वारा प्रस्तुत किया गया है--

इसमें मूल बीज और फल वाली वस्तु संघर्ष के मध्य में से विकसित
ती है।

तीसरी परिपाटी हिन्दी प्रेमगाथाओं की है।

इसमें वस्तु की उपलब्धि पर एक भाग समाप्त होता प्रतीत होता है
सरे में वस्तु उपभोग अथवा वस्तु संरक्षण का स्वरूप चित्रित किया जाता है।
न्य कथा-वस्तु में फल नहीं होता। फल उसके द्वारा अभिव्यक्त अथवा ध्वनित
किसी अभिप्राय में होता है।

वर्माजी की मृगनयनी की कला का पहला प्रतिबन्ध यही 'विकास' का नियम है, यह विकास भी उस तीसरी कोटि का जो हिन्दी की अपनी शैली कही जा सकती है। इसमें 'कथा-वस्तु' तो अपने रूप में, कहानी के ढंग पर चलती रहती है, पर अभिप्राय बीज से फल की स्थिति तक इसी में होकर पहुँचता है। कथावस्तु की शिथिलता को अभिप्राय का आकर्षण और अभिप्राय की शिथिलता को कथावस्तु का आकर्षण संभाले रहते हैं, जिससे उपन्यास ढीला नहीं हो पाता। ऐसे उपन्यासों में 'चरम' (क्लाइमैक्स) नहीं होता। बहुधा ये 'जीवनी' के जैसे रूप ग्रहण कर लेते हैं। इसी कारण 'मृगनयनी' मृगनयनी की जीवनी ही विदित होती है। किन्तु जीवन की कथावस्तु में जो अभिप्राय है 'कला के शुद्ध स्वरूप की उपलब्धि' विकास उसी का दृष्टिगत होता है। स्थापत्य नृत्य तथा चित्र के प्रतीक में इसी की पूर्णता का मर्म प्रकट किया गया है। इस कला को पूर्ण कल्याण और मान्दता तब प्राप्त होती है जब मृगनयनी न्याय और सत्य के लिए, कर्तव्य पक्ष के लिए अपने अथवा अपने पुत्रों के स्वार्थों का भी प्रसन्नता पूर्वक साहस से त्याग कर देती है यहीं कला का फलागम और नियताप्ति है, यही अभिप्राय का चरम, उपन्यास का चरम है। प्रकृति की पवित्रता और सौन्दर्यशीलता मृगनयनी में व्याप्त होती है। बीजकी भांति वह विविध प्रेरणाओं के रूप में व्यक्त होती है, कलुष और पावनता में संघर्ष है,—प्रकट नहीं, अन्तर्व्याप्त कला की शक्ति कलुष पर धीरे धीरे विजयिनी होती है। सुमन मोहिनी के आभूषण को लौटाने का साहस इसी कला की विजय का प्रथम संकेत है। इसके अनन्तर कला का मौलिक स्वरूप

उद्भासित होता चला जाता है, कला का कर्तव्य से कुछ सघर्ष फिर भी ध्वनित होता रहता है किन्तु कला कर्तव्य के साथ इतना तादात्म्य प्राप्त कर लेती है कि अभिन्न हो जाती है तभी वह चरम उपलब्धि होता है जिसमें त्याग ही कलात्मक हो गया है।

इस विकास में मानसिह द्वारा मृगनयनी की उपलब्धि, अथवा मृगनयनी द्वारा मानसिह की उपलब्धि केवल अभिप्राय की फलोपलब्धि का एक साधन है यह वात दृष्टव्य है कि जहाँ तक मानसिह और मृगनयनी का सबध है, उपलब्धि मानसिह को नहीं हुई 'मृगनयनी' को ही हुई है- दो कारणो से ।मानसिह सामर्थ्य वान है, उसके यहा सात रानिया है, आठवी का अर्थ भी उतनाही साधारण होता। उधर मृगनयनी के लिए मानसिह वस्तुत एक उपलब्धि है (achievement) मानसिह मे 'मृगनयनी' को प्राप्त करने के लिए कोई उद्योग नही दिखायी देता। मृगनयनी में वह उद्योग निरतर स्पष्ट है। भारतीय प्रथा से जब राजा रानी प्राप्त करना चाहता है, तो उद्योग करके कोई परीक्षा देकर उसे प्राप्त करता है, धनुष तोडे, या मछली वेधे आदि । यहाँ परीक्षा मृगनयनी को देनी पडी है, राजा को नही ।

दूसरा कारण मृगनयनी ने मानसिह को उपलब्ध किया है, तभी उसने उसे अपनी शर्तो से वाधा है । उपलब्ध करने वाला ही अपनी उपलब्धि को अपनी शर्त के अनुसार स्वरूप दे सकता है ।

इस दृष्टि से इस उपन्यासकार का एक बधन तो भारतीय विकास का है, और इसी से सलग्न दूसरा, 'अभिप्राय' का है। फलत यह उपन्यास न तो घटनात्मक है और न चारित्रिक अथवा मनोवैज्ञानिक है, यह आभिप्रायिक (Novel of purpose) है ।

उपन्यासकार ने उपन्यास के द्वारा अपनी भारतीय धारणाओ को ही यह महत्त्व प्रदान करने तथा उन्ही की प्रतिष्ठा करने का उद्योग किया है । यह धारणा सबसे अधिक उपन्यासकार के प्रेम-सबधी दृष्टिकोण से स्पष्ट होगी । उपन्यास रूमानी (रोमाटिक) है, रूमानी में घटनाओ के वैलक्षण्य के साथ प्रेम की तीव्र ऊष्मा होती है, और उसमें कुछ अनगढता (रफनेस) होती है । प्रेम को उपन्यासकार ने चित्रित किया है, पर यह प्रेम भारतीय प्रेम है । भारतीय प्रेम युवक-युवतियों की चचल-क्रीडा नही होती । उसका मूलतत्व आध्यात्मिक

होता है। प्रेम इतनी पावन वस्तु है कि न तो उसका कही नाम लिया जा सकता है, और न उसका किसी दूसरे अस्पर्श्य से स्पर्श हो सकता है, क्योंकि वह तो किसी विधि-विधान से सुनिश्चित होता है। ऐसे प्रेम में न तो प्रतियोगिता और प्रतिद्वन्द्विता आकर अडती है, और न कही प्रेम का त्रिकोण ही बनता है। प्रेम मे केवल दो विन्दु होते है,वे एक सीधी रेखा बनाते हैं और उसे बनाते ही चले जाते हैं, मानसिंह-मृगनयनी, अटल-लाखी के प्रेम का ऐसा ही स्वरूप है। अटल और लाखी के प्रेममें एक तीसरा विन्दु पिल्ली के रूप मे अवश्य दिखलायी पडता है, पर वह पिल्ली कभी गंभीर स्थान नही प्राप्त कर पाती, उसके प्रेम की कृत्रिम भूमिका से तो लेखक ही पाठक को परिचित करा देता है, अटल और लाखी भी उसे कोई महत्त्व नही देते, लाखी मे कुछ गंभीरता आती है, वह गंभीरता पिल्ली के षड़यन्त्र को विफल करने में साधन के रूप में काम मे आकर बातो मे ही उड जाती है। पिल्ली के प्रेम की जो कृत्रिम भूमिका पाठक को विदित हो जाती है, उसके कारण यह नही प्रतीत हो पाता कि पिल्ली के प्रेम की गहराई कितनी है। ऐसे आभास मिलते अवश्य हैं जिनसे पिल्ली का प्रेम अटल के प्रति गहरा और सच्चा होता जाता है और वह 'लाखी' को गयास के हवाले कर अपने मार्ग का काटा दूर कर देना चाहती है। किन्तु इसके विषय मे निश्चयात्मक रूप से कुछ भी नही कहा जा सकता, और ऐसे चित्रण में उपन्यासकार की कला की प्रशसा ही करनी पडती है। इस प्रकार उपन्यासकार ने अटल और लाखी के प्रेम को भी दो विन्दुओ की रेखा के रूप मे ही प्रस्तुत किया है, तीसरा विन्दु समानान्तर दौडने की चेष्टा मे ही मिट जाता है। अत इसमे न तो प्रेम के लिए कोई वास्तविक संघर्ष ही मिलता है, न प्रेम का त्रिकोण ही।

इस भारतीय भावधारा की परंपरा के प्रेम के चित्रण में एक दूसरी सीमा इतिहास ने भी दी है। उपन्यासकार इन दूसरे चरण के उपन्यासो में इतिहास के प्रति बहुत सावधान और ईमानदार रहा है। उसने यह चेष्टा की है कि इतिहास का उल्लंघन किये बिना ही उपन्यास लिखा जाय। यह एक बहुत बड़ा बंधन है, और यह अत्यन्त प्रशंसनीय है कि लेखक ने इतिहास की सीमाओं को सुरक्षित रखते हुए भी उपन्यास की औपन्यासिक कला में शिथिल नहीं होने दिया।

मिट्टी का तकाजा भी लेखक के साथ एक प्रतिबंध ही मानना होग मृगनयनी अटल और लाखी भूमि-पुत्र और पृथिवी-पुत्र हैं। पृथिवी-पुत्र और रा पुत्र की संस्कृतिओं के सामंजस्य की समस्या इसी कारण खड़ी हुई है। मृगनय की गले की चांदी की हंसुली, साक नदी को ग्वालियर लाने की चेष्ट ग्वालियर के स्थापत्य में ग्रामीण प्रकृति के अभिप्रायों का उत्कीर्ण होना अ ही नहीं कला और कर्तव्य के संघर्ष में भी ग्रामीण उदाहरणों और घटनाओं प्रेरणा मिलना भी उसी मिट्टी के तकाजे के फल हैं। भूमि-पुत्रों की सीमायें उस साथ सदा विद्यमान हैं, यही उपन्यासकार की भी सीमायें बन गयी हैं।

भारतीय समाज की कुछ विशेष समस्यायें भी हमें उपन्यासकार विवशतायें और सीमायें हैं, वे प्राय उसके उपमाओं में, अथवा बहुध प्रकट हो जाती हैं। ये विवशतायें समाज की ही विवशतायें हैं। इनमें मुख्य है जाति-बंधन की अवहेलना। उपन्यासकार जाति-बंधन को समाज लिए अब विशेष उपयोगी नहीं मानता—तभी उसने मानसिंह से बोधन समक्ष ये शब्द कहलाये हैं——

"शास्त्री, सोचो, इस प्रकार का कहा वर्णाश्रम हिन्दुओं कितनी रक्षा कर सका है। रक्षा के लिये ढाल और तलवार दो अनिवार्य रूप से आवश्यक है। जातपात ढाल का काम तो कर सकी और कर रही है। परन्तु तलवार का काम तो हाल के युग का उ कर पाया है और न कभी कर पावेगी।"

मानसिंह और मृगनयनी का सम्बन्ध भी 'वर्ण' का उल्लंघन करके और अटल तथा लाखी का भी। अटल-लाखी के प्रेम की कसौटी ही वर्ण-धर्म बना है। यों तो वृथा-विधान के समस्त पात्रों में सम्बन्ध प्राय ऐसा ही स्वरूप है। मानसिंह और मृगनयनी का विवाह भी विरुद्ध हुआ है बोधन शास्त्री ने मानसिंह और मृगनयनी का विवाह चाव में कराया है किन्तु लाखी और अटल के विवाह सम्बन्ध आपत्ति की है ——

"मैं राज्य को छोड़कर परदेश चला जा सकता हूं, परन्तु वर्णाश्रम को लात नहीं मार सकता।" किन्तु राजा के साथ वर्णाश्रम धर्म के वि

जाकर बोधन शास्त्री ने क्यो मृगनयनी का विवाह कराया, इस सबध मे शास्त्री जी ने स्पष्टीकरण करते हुए बताया है कि –

"वह राजा है। राजा किसी देवता का अवतार होता है, वह कर सकता है। उसको सब सुहाता है। तुम लोग राजा नही हो। तुम्हारे लिये मनाई है।"

एक ओर तो लाखी-अटल के इस वर्ण-विरुद्ध विवाह ने कुछ रोमास उत्पन्न की है, दूसरी ओर जाति-बहिष्कार के भय ने उन दोनों को राई छोडकर नटो के साथ मगरौनी और नरवर जाना पडा है, जाति-बहिष्कार और जाति-विरुद्ध-सबध के प्रति समाज की असहिष्णुता का भय नटो के हाथ में लाखी-अटल के विरुद्ध एक अस्त्र का काम भी देता रहा है। इस प्रकार इस सामाजिक समस्या के आधार पर ही लाखी-अटल का वृत्त खडा होता है, और प्रगति करता है।

दूसरी ओर इसी प्रश्न को लेकर बोधन को ग्वालियर राज्य छोडकर जाना पडा है, और अत में सिकदर के मौलवियो से शास्त्रार्थ करके प्राण गँवाने पडे है।

इसी सामाजिक समस्या के बधन के साथ ही लेखक के साथ धर्म के दृष्टि-कोण ने भी कुछ बधन प्रस्तुत किए है। लेखक स्पष्टत हिदू धर्म की ओर झुका-हुआ है। हिन्दू धर्म की तुलना में मुसलमान धर्म के मर्म मे कुछ कमिया दिखायी गयी है, और उनके लिये अवसर लाये गये है। गयासुद्दीन, नासिरुद्दीन, बघर्रा और सिकन्दर चार-चार मुसलमान शासकोका समावेश 'मानसिंह-मृगनयनी' के प्रयत्न की महत्ता सिद्ध करने के लिये पृष्ठिभूमि अथवा कसौटी के रूप मे उचित माना जा सकता है, किन्तु गयासुद्दीन के प्रसग में निम्नलिखित अवतरण विचारणीय है –

"जहन्नुम मे जायें मुल्ले मौलवी। मेरा बस चले तो सारे के सारे फिरके को हिन्दुओ के बैकुठ मे पहुँचा दू, जहा करते रहें बहस कयामत तक परियो और फरिश्तो से" (गयासुद्दीन)

"यहा कोई मुल्ला मौलवी तो बैठा नही जो तुम कालिदास को काफिर कहो। वाह! क्या शायर था! शायर नही शायरो का जौहर था। दुनिया के किसी भी पर्दे पर ऐसा शायर नही हुआ।"

ऐसे ही प्रसग मे एक प्रधान काजी जी को लेखक ने गयासुद्दीन के समक्ष रात म बुलवा ही तो लिया है, और काजी महोदय भी मसजिद बनाने वाले हिन्दुओ की शिकायत लेकर आये है । यह सारा प्रसग ही लेखक की उक्त विवशता के कारण अवतीर्ण हुआ है, इस प्रसग मे निम्न अश विशेष दृष्टव्य है ।

"जहांपनाह, कारीगरो ने मसजिद के सदर दरवाजे पर बाजू के लिये जो पत्थर तैयार किये है उनमें बेल, बूटो, पत्तियो और फूलो की पच्चीकारी के साथ चिडियो और बन्दरो की मूर्ति नकश कर दी है। मना करने पर भी नही माने कल बडे सवेरे वे इन पत्थरो को सजाकर ऊपर की मजिल रचा देगे । फिर मसजिद के इस हिस्से को तुडवाना पडेगा जो बहुत बुरी बात होगी ।"

"और कुछ ।"

"और खुदावन्द यह है कि इन लोगोने बिना पूछे ताछे मीनार की गुम्बजो की खिडकिया कमानीदार न बनाकर, जो ईराक का नमूना है बडेरीदार बनाई है । जिसमें हिन्दुओ के मन्दिरो जैसे वन्दरवार रख दिये है ।

"और भी कुछ ।"

"हा जहापनाह सदर दरवाजे की गोख के लिये जालिया झरोखे उनके ऊपर के कगूरे मन्दिरो के जैसे रच डाले है । कगूरो के साधने के लिये मोर और घोडो के सिर वाले पत्थर बनाये है। उन्होने इस सबो को सजो डालने के लिये कल का दिन रक्खा है। यह सब तुगल की सादगी और नकशे नमूने के खिलाफ है। मसजिद के देखने वाले तुन्दी और बुलन्दी की जगह इस सिगार और सजावट को देखकर गलत फहमी मे पड जायगे कि यह मसजिद है या मन्दिर ।"

"उसमे बुत न हो तो भी ।"

"बिला शक जहापनाह ।"

"किसने कहा ?"

"मुल्ला और मौलवी फतवा दे रहे है ।"

"अब तक कहां सो रहे थे ये । बहुत सा हिस्सा तो मसजिद का बन भी गया है ।"

"उसमें कोई ऐसा बडा नुक्स नहीं है ।"

"मुल्ला और मौलवियो के बाप ने भी कभी इमारतें बनवाई थी हिन्दुस्तान में ?"

"जहापनाह"

"आप लोगो का ऐतराज चिडियो, बन्दरो, घोडो और मोरो की तस्वीर से ज्यादा ताल्लुक रखता है । है न ऐसा ?"

"जहापनाह ने ठीक फरमाया ।"

"कारीगरो ने जो कुछ पुराने जमानो से कारीगरी के रिवाज से सीखा है उसी को तो पेश कर रहे है ।"

"मगर जहापनाह यह रिवाज गलत है, कुफ्र मे सना हुआ । जान-बूझ कर कारीगर शरारत कर रहे हैं । मना करने पर भी नही माने ।"

"अपने मनके सलोनेपन के तकाजे से कैसे लड जायं वे गरीब? आप समझे ?

"बन्दा क्या अर्ज करे जहापनाह । मौलवी इसके खिलाफ फतवा देने वाले हैं ।

"कारीगरो की फितरत में कुछ मसलहत भी दिखलाई पड रही है ।"

काजी प्रश्नसूचक दृष्टि करके रह गया ।

गयास ने सरूर के लहजे में बतलाया, "मोर खूबसूरत चिडिया है सो आप लोगों में से मोर कोई भी नहीं, उसको देखते ही आप लोगो को अपनी कमी टस-टस लगी । घोडे का सिर्फ सिर दिखलाया गया है, इसीलिये आपको याद आती रहेगी कि आप आधे घोडे हैं और आधे कुछ और । बन्दर की तस्वीर पेश करने में मसलहत की हद कर दी उन कारीगरो ने । आप सब असल में बन्दर हैं, बिल्कुल बंदर । खिलाओ तो चपड़ चूं चूं करें और न खिलाओ तो भी वही करें, न भले को ठिकाने से रहने दें और न बुरे को । और...।"

इसी के साथ बघर्रा के विसंवादी वर्णन में भी लेखक ने ये शब्द उस अद्भुत पुरुष के ही मुह में रख दिये हैं ।

"उन मन्दिरो को मैंने भी देखा था, बुतो को भी। कुछ भी हो मन्दि खूबसूरत। बुतो को तोड डालते, काफी था। पत्थर को जान देने के फन में हि ने जिस कमाल को हासिल किया है, ताज्जुब होता है। हमारे मुसलमान तो कारीगीरी नही कर सकते। उस कारीगरी को जबान में ही अदा नही कर वैसा करतब कर दिखाना तो बहुत दूर की बात है।"

दरबारी सिर झुकाये हुए चुप रहे। बघर्रा ने मन में कहा, "पहाडो, फूल, पत्तियो, कोयल की कूको और परियो की लोच लचको को जैसे एक इन मन्दिरो के बनाव सिगार में टाँकी और हथौडे से मचल मचल कर दिया हो। मै तो देखकर ठगा सा खडा रह गया था। और बुत भी बेपनाह गुर्गी के। चाहता था उन बुतो को वैसे ही निगल कर पेट के किसी को रक्खे रहू। अरे यह तो कुफ है। लेकिन कुफ अगर दिल को चैन दे तो क्या व तोबा! तोबा! खुदा खैर करे।"

कवल यही नही कि बघर्रा ने मुसलमानी विश्वासो के विरुद्ध हार्दिक अभिमत ही प्रकट किया हो, उसने इस बहाने उनकी नैसर्गिक कमी को भी मकन किया है। आगे उसने कुछ और भी कला के ही बहाने कहा है —

"बघर्रा ने मुलायम स्वर में कहा— फिर भी जान पडा जैसे कई फटे एक साथ बज पडे हो— 'कोई बात नही। मुझको इन दिनो काची या विजय में दिलचस्पी नही है। माडू में बहुत से हिन्दू कारीगर है। मुसलमान हो वे तैयार नही। जबरदस्ती उनके साथ की नही जा सकती। माडू की के नतीजे में उनको यहा पकड लाऊ और मजहब बदलने के लिये न क वे अहमदाबाद को और भी मजा देंगे। मुल्लो और काजियो ने मेरे ख्याल की कर दी है, इसलिये कोई भी दिक्कत नही। जजिये की शक्ल में उनकी म में से थोडा सा कर लिया जाया करेगा।"

कला के प्रश्न को लेकर इस प्रकार मुल्ला और मौलवी उभरे है, और केवल कला के बहाने ही राजनीतिक कारणोमे भी इनकी भर्त्सना करायी ग

तीसरे अध्याय में फिर गयास को उत्तेजित होकर हम मुल्लो के में यह कहते सुनते है —

"गधा है। बेवकूफ है।। नालायक है।। जाहिल है वह मुल्ला।।। मुल्ला नही कठमुल्ला है। निकाल दो उसको छावनी में से। माड़ू से भी कर दो उसका काला मुंह। सल्तनतो की बरबादी की जड मे ये मुल्ले ही तो रहे है।"

उधर गयास के पुत्र नसीर को भी मुल्लो से परेशान दिखाया गया है –

"भाई ख्वाजा, इन मौलवियो के मारे तो बेहद परेशान हो गया हू।"

ये मुल्ले और मौलवी बहुत असर रखते थे, तभी ख्वाजा मटरू ने नसीर को सलाह दी कि– "जो कोई भी हिन्दुस्तान मे सल्तनत कायम करना चाहे या कायम रखना चाहे तो उसको मुल्लो की दुआ अपने साथ रखनी होगी।"

इस प्रकार कुछ लोगो के मुख मे ही ऐसे कथन लेखक ने नही कराये स्वयं भी स्थिति का विश्लेषण करते हुये उसने लिखा –

"मुल्ले-मौलवियो ने इस्लाम को जैसा और जितना समझा था, उसके अनुसार वे अपने इन चेले-चाटो को जगाया, उकसाया और भडकाया करते थे। सुल्तान न सुनता तो सरदारो को, सरदार न सुनते तो सिपाहियो को ये, मुल्ले-मौलवी, धर्मयुद्ध-जिहाद के लिये भडकाया करते, षडयन्त्रो में भाग लेते और जब तक कुछ कर न गुजरते तबतक दम न मारते।"

इस प्रकार कला के प्रश्न से आरंभ करके धीरे-धीरे लेखक ने मुल्लो और मौलवियो के दृष्टिकोण, प्रमाद, हस्तक्षेप, कार्यप्रणाली और षडयन्त्र आदि का स्पष्टीकरण करते हुए सुल्तानो सरदारो तथा सिपाहियो पर उनका अधिकार दिखाते हुए उस दृश्य को भी प्रस्तुत कर दिया है जहा सिकंदर लोदी के दरबार में शास्त्रार्थ के लिये ललकार कर बोधन शास्त्री को धर्मान्धता और अधिकार-मद ने विवश किया कि" हार मान जाओ और इस्लाम को कबूल करो तब यहां से जा सकोगे।"

और जब बोधन ने निर्भयतापूर्वक सगर्व कहा–

"मेरा धर्म किस धर्म से कम है जो मैं अपनेको छोडकर दूसरेका पल्ला पकडू,"– तब मौलवियो की क्रूरता की पराकाष्ठा भी दिखायी गयी कि बिचारे बोधन का इस्लाम न कबूल करने पर उन्होंने अपने निर्णयसे उसका सिर कटवा दिया

बोधन संबंधी इस ऐतिहासिक वृत्त के संबंध में लेखक ने भूमिका में संकेत करते हुए लिखा है – "बोधन ब्राह्मण ऐतिहासिक व्यक्ति है। उसके मारनेवालों की बर्बरता का मैंने बहुत थोड़ा वर्णन किया। उसके कुरूप का लाघवमात्र प्रस्तुत किया है– करना पड़ा।"

इस वक्तव्य के अंतिम शब्द 'करना पड़ा' वर्तमान परिस्थिति में उसकी मनोवृत्ति के प्रतिबंध को बहुत ही स्पष्ट कर देते हैं।

यों तो लेखक के प्रथम चरण के उपन्यासों में भी मुसलमान आये थे, पर उनके साथ लेखक का व्यवहार बहुधा प्रेमचन्द की कोटि का था। उनमें सद्गुण और सद्भावों की प्रतिष्ठा उन्होंने की, किन्तु 'झाँसी की रानी' से उनका रुख कुछ सख्त हुआ यद्यपि झाँसी की रानी में भी खुदाबख्श, बरहाम, गौस तथा गुलमुहम्मद जैसे आदर और श्रद्धा के पात्र मुसलमान भी हैं। पर पीरअली और अलीबहादुर का दीर्घ-, वृत्त भी है जो स्वार्थलिप्त देशद्रोही व्यक्तियों का निकृष्ट वृत्त कहा जा सकता है। रानी लक्ष्मीबाई में यह पीरअली -अलीबहादुर का वृत्त कथानक का आवश्यक अंग बनकर ही प्रस्तुत हुआ था, पर मृगनयनी में इनका समावेश और इनमें इतनी दिलचस्पी कुछ भिन्न प्रकार की है। एक दृष्टि से तो मुसलमान सुल्तानों का ही समावेश इसमें हुआ है, साधारण मुसलमान प्रजा का नहीं। फलत सुल्तानों और प्रजा के चरित्र-भेद के कारण निरूपण में भेद आया है। सुल्तानों के साथ मुल्ला-मौलवी भी आये हैं, इनमें और सुल्तानों में घोर आन्तरिक मत-विरोध है, पर सभी सुल्तान मुल्ला-मौलवियों के समक्ष विवश हैं, और प्रत्येक अपने मन के खिलाफ भी इन्हें प्रसन्न रखना चाहता है। इस परस्पर के अन्तर-विरोध से मुसलमानों के तत्कालीन यथार्थ स्वरूप का दर्शन हमें हो जाता है। सुल्तानों द्वारा मुल्लाओं की उनकी पीठ पीछे की भर्त्सना में मुसलमानी धर्म के अभावों का भी संकेत हमें मिल जाता है, साथ ही हिन्दुओं की कला और मानवीयता का भी हमें ज्ञान हो जाता है।

बोधन के वृत्त के संबंध में भूमिका में लेखक ने अपनी जिस विवशता को बताया है, वह विवशता आधुनिक राजनीतिक विवशता ही है जिसके कारण लेखक को इस बात का प्रत्येक समय ध्यान रखना पड़ा है कि कोई ऐसी बात न लिख

। जाय जो भारत के सैक्यूलर राज्य में किसी प्रकार का धार्मिक वैमनस्य का भाव स्ट कर सके। इसी कारण इतिहास जो यथार्थ प्रस्तुत करता है उसे भी संशोधन के संशोधित यथार्थ के रूप में उपन्यास मे लेखक को देना पड रहा है। इस जनैतिक वर्तमान प्रतिबंध के फलस्वरूप लेखक की कला मे एक विशेषता दृष्टि-चर होती है। मुसलमानी धर्म के संबंध में कहीं कोई कटुबात नही कही गयी, सलमानों के प्रति भी कोई विद्वेष नही पैदा होने दिया गया, साथ ही मुल्ला-मौल-वियों की कहीं-कहीं कटु अलोचना करायी गयी है, वह भी उनके अपने ही र्मावलंबियो द्वारा करायी गयी है,—सुल्तानों द्वारा करायी गयी है और ऐसे सुल्तानों द्वारा जो धर्म तो बहुत दूर नैतिक निष्ठा को भी कोई महत्त्व नही देते। स प्रकार उस आलोचना के द्वारा प्रकट सत्य को भी मदहोशी की पृष्ठभूमि मे रखकर निर्जीव कर दिया है।

किन्तु इसी के साथ एक बात और दिखायी पडती है। रानी लक्ष्मीबाई में अलीबहादुर का चरित्र मुसलमान का चरित्र नही था, किसी भी देश-विरोधी स्वार्थी व्यक्ति का चरित्र था, वह लंबा छोटा जैसा भी वृत्त है, खुशामदी व्यक्ति का ही वृत्त है, एक प्रतीक, जिसका मुसलमानियत से कोई संबंध नही। पर इस उपन्यास में तीन-चार मुसलमान सुल्तानों का वृत्त प्राय आरंभ से चलकर अंत तक ही आता है। इसी दृष्टि से यह उपन्यास वस्तुत दो चरित्रो का अध्ययन प्रस्तुत करता है— एक मुसलमान-सामंत का चरित्र। दूसरा हिन्दू चरित्र।

वस्तुत गयासुद्दीन-नासिरुद्दीन-सिकंदर का अलग अलग वृत्त एकही वृत्त की भांति पढा जाना चाहिये-इन चारो का यह वृत-मुसलमान तत्कालीन सुल्तान का पूर्ण चरित्र प्रस्तुत कर देता है।

इस युग का मुसल्मानी सामन्त युग की आवश्यकता के कारण तो वीर होता था, अपनी आत्म-रक्षा के लिए कि कहीं कोई दूसरा सुल्तान आक्रमण न कर दे तथा राज्य-वृद्धि और धन-वृद्धि के लिए आत्म-रक्षा के लिए, वहाँ सेना तो मुफ्त में नहीं खिलाया जा सकता, उसके लिए युद्ध करने ही चाहिये-उनसे ही राज्य-वृद्धि भी हो सकती है, सेना को काम मिलता था, लूट से धन मिलता था, और सुल्तान को खिराज-इससे भी कोष की वृद्धि ! किन्तु व्यक्तिगत रूप से वह विलासी होता

था-सुदर गिलमाओ और हूरो-सुदर पुरुषो और सुन्दर स्त्रियो, शराब और नृत
नग्न रहने वाला, भागकी प्रवृत्ति का चरम पर पहुँचा कर ही उसे चैन मिलता थ
नसीरुद्दीन और बघर्रा व्यक्ति व तो इतिहास मे अद्वितीय और अलौकिक
इस भाग-तृप्ति के समक्ष न धर्म की, न ईमानकी कद्र इनकी नजरोमें रहती थ
इन चार सुल्तानोका चरित्र क विकासमे यह क्रम दिया जासकता है-

उद्दाम शौर्य (बघर्रा जिस क्रूरता से युद्ध करता था, करना चाहिए)	सिकन्दर –(शरूरमये शौर्य अथ के लिये क्रूर हो सकता था)	गियास-(जो शह की रगो मे ही लडता थ

नसीरुद्दीन-शू नसार जिसका समग्र शौर्य ही विलासिता मे व्यग्र हो

इसके विपरीत दूसरा चित्र हिन्दू सामन्तो का है-जिसका प्रतिनि
मान… – इस चित्र म भी पुजारी पंडित है, हठधर्मी और सुधार-विरोधी वे
… … विवादी शास्त्री जैसे किन्तु इन सबके अनुदार व्यवहार के प्रति
मानसिंह ने उदार दृष्टिकोण रखा है। बाघन को भी उसने समझाना ही …
… सल ही वह अपनी परिभाषा के अधर्म से रुष्ट होकर राज्य छोड गया। …
बाघन की मृत्यु की नहीं वध की महान दृश्य उपस्थित कर लेखक ने वे
की समग्र अदूरदर्शिता का परिमार्जन करा दिया है। बोधन आदि की अव
पर प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष भर्त्सना कराके भी उनके चरित्र में एक ओज और दृढता दि
कर सहानुभूति ही उदय करायी गयी है। बोधन जैसा कोई मुल्ला-मौलवी
मिलता, न निहालसिंह जैसा वीर, जिसके निर्भीक उत्तरो से सिकदर भी …
मा हो गया और जिसके बलिदान की तुलना ही नही हो सकती। बघर्
वीरता केवल हिंस्र पशुओ से ही तुलनीय है, यथार्थ में उनसे भी नही।
भोजनार्थ ही हिंसा करते है, बघर्रा शौक के लिये रक्त की नदिया बहाता
था। इस चित्र मे राजसिंह जैसे कुछ स्वार्थ-निर्भर व्यक्तिभी है पर उनके
भी अपने पूर्वजो का आदर्श और चारणो की प्रेरणा है, जिससे पतन में भी
गरिमा रहती है।

मृगनयनी के शौर्य को केवल फूलो के रग के आकर्षण की भाति बनाकर छोडदिया गया है। कला में उसकी परिणति एक अत्यन्त दरिद्र आस्था का परिणाम है। मृगनयनी का शौर्य केवल कला-परिणति भरकेही लिए समर्थ था ? ऐसा अनुमान लगाना उस शौर्य का अपमान करना है। क्यो उपन्यासकार मृगनयनी से स्त्री के सबल शारीरिक व्यक्तित्व का हृष्ट और पूर्ण विकसित स्वरूप प्रस्तुत कराने में सकोच कर गया है ? मानसिह द्वारा स्त्रियो का कर्तव्य-क्षेत्र की सीमा का निर्देश कराके ही वह क्या मृगननी के प्रबल व्यक्तित्व को कुठित नही करा रहा ? क्या इसी कारण राई की मृगनयनी राई में ही नही दफना दी गयी, और उसकी लाश ही राजभवनो मे नही ले जायी गयी, जिस पर मिश्री ममी की भाति विविध कलाओ की कारीगरी बलात उपन्यासकार ने विजयजगम, बैजू तथा कला जैसे कारीगरो के हाथो चित्रित करायी है। क्या कर्त्तव्य, सयम और भावना के सबध में मृगनयनी द्वारा दिया गया उपदेशामृत ऐसा नहीं विदित होता कि लेखक ने मृगनयनी की स्वर्ण-प्रतिमा के पेट में अपना ग्रामोफोन रिकार्ड ही बजवा दिया है ? क्या वह समस्त उपदेश राई वाली मृगनयनी के लिए सहज और स्वाभाविक है ? लेखक ने निश्चय ही राई की सजीव, स्पदनशील, मृगनयनी को राजमहलो की स्वर्ण-प्रतिमा बना डाला है ? मृगनयनी के शौर्य और सौन्दर्य में स्त्री जाति के लिए जिस सदेश और जिस प्रेरणा की सभावना थी लेखक ने उसे क्लृप्त कर दिया है। मृगनयनी के जीवन में प्रेम का भी कोई स्थान है, ऐसा विदित नही होता। राजा से उसका विवाह केवल सयोग का परिणाम है, जो मृगनयनी की महत्त्व भावना का फल है। तब लाखी– लाखी हमें आकृष्ट भी करती है और हृष्ट भी। वह स्पष्ट है, कर्मठ है, कर्तव्य को समझने वाली है, नई बातो को जानने सीखने के लिए उत्सुक है, बुद्धिमान है, अवसर पर क्या करना चाहिये इसका ज्ञान उसे हो जाता है, और वह तत्परतापूर्वक उसे करती भी है। उदार है। दृढ है और सकल्प को पूरा करनेवाली है। स्वाभिमानिनी है। वह अटल से प्रेम करती है और अन्त तक । उससे विवाह करती है, समस्त समाज की अवहेलना करके भी। वह मृगनयनी और अटल के आश्रय में रहकर भी अपने व्यक्तित्व को सबल और निष्कलक रखती है। वह तीर-कमान चलाना, बर्छी चलाना, नट-विद्या स्वय सीखती है और शीघ्र ही सीख लेती है। उसकी तत्पर बुद्धि और कर्मठता से नरवर की

रक्षा होती है, वह अपनी बलि देकर भी अपनी राई की गढ़ी को शत्रुओं से बचाती है। वह हर चीज को निस्संकोच स्वच्छ नेत्रों से देखना चाहती है। राजा को भी इसी प्रकार देखती है और नटों के करतबों को, तथा उनके कीमती वस्त्रों और आभूषणों को भी। किसी भी महत्व को पाने अथवा दिखाने का भाव उसमें अवश्य है पर इसके लिए वह कभी कीचड़ में पैर नहीं डालती, न दाग लगाती है। उसमें भी स्वाभाविक निर्द्वन्द्व महानता है। उसमें पिल्लो और अटल को लेकर कुछ भ्रम अवश्य है, पर वह उसका निराकरण शीघ्र कर देती है। मृगनयनी के साथ राजभवन में भी उसका व्यक्तित्व हीन नहीं होता। उसका जीवन मृगनयनी से अधिक संकटों से आवृत रहा है, उसे अधिक जीवट दिखाने के अवसर मिले हैं, उसका प्रेम भी वस्तुतः प्रेम है, सार्थक। उसने अटल से अटल प्रेम किया है, उसके लिए बहुत कुछ त्याग भी किया है। प्राणों को बाजी पर लगाकर भी उस प्रेम की उसने उपासना की है। लाखी और मृगनयनी पर तुलनात्मक दृष्टि डालते ही स्पष्ट हो जाता है कि वृन्दावन लाल वर्मा स्वयं तो लाखी के साथ हैं, पर उनका अहंकारी उपन्यासकार मृगनयनी के साथ गया है। लाखी के पैर परिस्थितियों के कारण कभी नहीं भूमि और पृथ्वी पर रहे हैं, मृगनयनी के पैर विवाह के बाद पृथ्वी पर से उखड़ गये हैं। पृथ्वी पर से उखड़े पैरों को वर्मा जी ने अपनी लेखनी के करों पर सम्भालने की चेष्टा की है, पर उनके अपने हाथ लाखी की पीठ ठोंकते रहे हैं। वस्तुतः एक वृक्ष की दो शाखाओं की भांति मृगनयनी और लाखी दो दिशाओं में प्रवाहित हुई हैं। दोनों में स्त्रियों की महानता के दो रूप प्रस्तुत हुए हैं। क्यों वह दोनों को एक में समन्वित करके एक तीसरी महानता स्वरूप नहीं खड़ा कर सका? इस प्रश्न का उत्तर उपन्यासकार के उन प्रतिबंधों में है जो ऐतिहासिक यथार्थ और सामाजिक आदर्श का नाम पाते हैं।

सुमनमोहिनी में स्त्रियों का विकृत ही विकृत चरितार्थ हुआ है। वह [illegible]ियाडाह की प्रतिमूर्ति है, और हास्य-व्यंग-कटाक्ष-कटूक्ति के साथ किसी भी [illegible] में तक, विष देने तक, उतर सकती है। मृगनयनी को तीन बार विष देने [illegible] के उसके उद्योग विफल होते हैं। वह इसी सौतियाडाह में प्रेरित होकर अपने पति को [illegible] अपमानित करने, उन्हें सौत पहचानने में भी नहीं चूकती, अपने पुत्र को युवराज पद [illegible] दिलाने [illegible] लालसी में भी इसी क्षुद्रता का हाथ है। क्या सुमनमोहिनी जैसी स्त्री [illegible] और [illegible] कोई आदर्श का स्थान नहीं मिल सकता था?

कला कलावती है नर्तकी और चित्रकार, 'लाखी की भति सुदरी मृगनयनी की शिक्षिका किन्तु वह राजसिह की दूती बनी है, और इस कार्य को उसने सब प्रकार निभाने की चेष्टा की है। कला की जिस महत्ता का परिपोषण उपन्यासकार को करना चाहिये था वह कला के चरित्र से उसने नही कराया। कला की महत्ता और जीवन की क्षुद्रताओ का सामञ्जस्य हो सकता है यह सकेत वह सदा करता रहा है। कला का तो समस्त जोवन ही कला के महत उद्देश्य की विडवना सिद्ध करता है। कला क्यों राजसिह की दूतिका बनना स्वीकार करती है? राजसिह के उद्देश्य की महानता में विश्वास रखने के कारण? राजसिह के प्रेम के कारण? अपने नरवर प्रेम के कारण? सब अस्पष्ट ही है। अपने इसी दौत्य के कारण ही उसे सुमनमोहिनी के हाथो विकना पडता है, इसी के कारण उसे निहालसिंह को आक्रान्त कर मानसिह के विराव के बीज डालने पड़ते है? और इतना सब कुछ कराने के उपारन्त भी लेखक ने कला को मक्खी की भाति निकाल फेका है। कला के जैसे चरित्र के विषम तत्वो से जिस विषम सयोजना की सभावना हो सकती थी, उसे उपन्यासकार सिद्ध नही कर सका। 'पिल्लो' के सबध में तो अटल को यह सम्मति यथार्थ है कि 'वह स्त्री थी (पत्नी नही थी)? घूरे पर मडलाने वाली तितली को स्त्री कहा जाता है?"-घूरे पर मडलाने वाली 'तितलो थी' पिल्ला, निर्लज्ज और स्त्रित्व हीन!

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उपन्यासकार ने महती सभावनाओं के बीजारोपण करके अपने चरित्रो को स्वाभाविक रूप से विकसित नहीं होने दिया, उन्हें बौना कर दिया है। हम यह भी देख सकते है कि इन चरित्रो के स्वाभाविक विकास में इतिहास बाधक नही हो सकता था, केवल उपन्यासकार की अपनी धारणा और उसका अपने व्यक्तित्व का आतक ही इसमे बाधक हुआ है।

चरित्र-चित्रण की अपनी निजी टेकनीक में उसने वाणीविलास का अत्यत सुदर सहयोग प्राप्त किया है, यह निर्विवाद है। इस उपन्यास के सभाषणों में भले ही वचन-विदग्धता और वाणी-चातुर्य न हो, पर भाव सौष्ठव और हार्दिकता अत्यन्त आकर्षक ढग से व्यक्त हुई है, जिससे सभी पात्रो के कथन स्वाभाविक हुए हैं।

परिशिष्ट

ऐतिहासिक भूमि

वर्मा जी के इन दूसरे चरण के उपन्यासों में इतिहास के प्रति भक्ति बहुत बढ़ गयी है। वे शुद्ध इतिहास को ही जैसे उपन्यास में ढाल देना चाहते हैं। इसके लिए वे उपन्यास में क्षोभ सहन करने को प्रस्तुत हैं, पर इतिहास की लीक को त्यागने का प्रश्न तो दूर उसके किनारे दूब उगाने और फूल खिलाने की चेष्टा भी वह नहीं करना चाहते। उन्होंने मृगनयनी की भूमिका में मृगनयनी के ऐतिहासिक आधार का बहुत कुछ स्पष्टीकरण कर दिया है। मानसिंह, मृगनयनी, निहालसिंह राजसिंह, अटल, लाखी, गियासुद्दीन, बघर्रा, बोधन, विजयजंगम सभी महत्वपूर्ण प्रमुख पात्र ऐतिहासिक हैं। नट ऐतिहासिक हैं, पर उनमें पोटा और पिल्ली दो नाम थे यह बात इतिहास से सिद्ध नहीं हो सकती। ये लेखक की निश्चय ही अपनी सूझ है। इन ऐतिहासिक पात्रों के संबंध में कोई विवाद और भ्रम भी नहीं था। किन्तु 'बैजू बावरा' के संबंध में कुछ भ्रान्तियां हैं, और उन का मानसिंह और मृगनयनी से कोई संबंध था इसमें संदेह किया जा सकता था। इस संबंध में उपन्यासकार ने अपने उपन्यास की भूमिका में भी कुछ उल्लेख नहीं किया। वस्तुतः यह धर्म है तो आलोचक का ही कि वह उपन्यास के समस्त ऐतिहासिक स्रोतों का निरीक्षण करे और स्वयं पता लगाये कि इतिहास और उपन्यास का सामञ्जस्य कैसे बिठाया गया है, पर जब लेखक से संपर्क स्थापित करना संभव हो तो सरल मार्ग भी अपनाया जाता है, इसी कारण बैजू के संबंध में कुछ प्रश्न उपन्यासकार महोदय से पूछने की धृष्टता की गयी। उन्होंने अत्यन्त कृपापूर्वक बैजू के संबंध में ऐतिहासिक समाधान लिख भेजने का कष्ट किया है। जिसे यहां दिया जा रहा है। वस्तुतः यह उनकी अपने उपन्यास की भूमिका का ही अंश समझा जाना चाहिए। उनका पत्र यथावत् इस प्रकार है।

प्रिय डॉक्टर सत्येन्द्र जी,

चि० सत्यदेव, मेरे पुत्र, आपसे आगरे में मिले थे। आपका पत्र उनके पास वैजू के संबध में कुछ वातें जानने के वावत बहुत दिन हुये आया था। मै आपको उत्तर न दे सका, इस हेतु क्षमा प्रार्थी हू।

एक नये उपन्यास 'अमर वेल' के पूरे करने की धुन में इतना मलग्न था कि लिख डालने के उपरान्त स्मरण ही नही रहा।

वैजू मानसिह के दरवार में था। मृगनयनी और मानसिह के सहयोग से उसने ४ प्रकार की टोडी रागनियो का आविष्कार किया जिनमें से एक— 'गूजरी टोडी' अव भी अनेक गवैये गाते हैं। ध्रुवपद को धमार परिपाटी में परिवर्तित करने का काम वैजू ने मानसिह के आग्रह और अपनी रसिकता के कारण किया था। इस समय सारी ऐतिहासिक सामग्री मेरे सामने नही है, परन्तु एक पुस्तक का नाम याद है जिसमें यह वात मिल जायगी। पुस्तक उर्दू में है। नाम है मारफुन्नग्मात।' इसके रचियता राजा नवाव अली खाँ है। (या यदि अव स्वर्गवासी हो गये हो, तो थे)। नवाव अली खा भातखडे जी के सहयोगी थे। उन्ही की सहायता से वह पुस्तक लिखी गई थी।

मानसिह ने जो सगीत विद्यापीठ ग्वालियर में वैजू की सहायता से स्थापित किया था उसी में तानसेन ने शिक्षा पाई थी यद्यपि तानसेन को प्रेरणा स्वामी हरिदास से मिली थी। तानसेन मुसलमान हो गये थे एक मुसलमान सुन्दरी के प्रेम और गौस मुहम्मद फकीर की श्रद्धा के कारण। वेजू और तानसेन समकालीन नहीं थे। रवायतें गायनप्रेमियो के इच्छा सकल्पो के फल है। मानसिह का देहान्त १५१७ में हुआ। वेजू उस समय ३० और ४० की आयु के वीच में था। मानसिह के देहान्त पर वह वहादुर शाह (गुजरात का सुल्तान) के दरवार मे चला गया। वही उसने वहादुरी टोडी नाम की रागिनी का सृजन किया जिसे वडे गवैये अव भी गाते है। १५४० के लगभग अकवर का जन्म हुआ। इस समय वैजू की आयु ६० के लगभग होगी। १५६५ के उपरान्त तानसेन अकवर के दरवार में आये। तव तक वैजू का निधन गुजरात में ही हो चुका था।

तानसेन एक अर्थ में ही वैजू के शिष्य कहलाये जा सकते हैं, कि वे वैजू द्वारा स्थापित विद्यापीठ और सगीत परम्परा के शिष्य थे।

तानसेन ग्वालियर के निकटवर्ती एक गाव के रहने वाले थे। उनके पिता द पाडे जिस देवालय में पूजन करते थे वह भग्नावस्था मे अब भी वर्तमान है।

बैंजू चदेरी के रहने वाले थे यह मेरी खोज है। वे चदेरी में बाल्यावस्था । वहीं उन्होंने एक गुरु के पास गायकी सीखी। वहीं से वे मानसिह के पास नयर आये थे।

एक गीत है:-

सुनो हो गोपाल नायक, कहत बैंजू तानसेन' इत्यादि

नव निरा कल्पना प्रसूत है। गोपाल नायक अमीर खुसरो का समकालीन सो बैंजू तानसेन काल मे २०० वर्ष पूर्व हुआ था। यही इच्छा सकल्प बैंजू को सेन के समकालीन बनाये डाल रहा है। आप जो कुछ प्रश्न करेंगे यथा शक्ति र देने का प्रयत्न करूगा।

पाशा है आप स्वस्थ है।

आपका
वृन्दावनलाल वर्मा

कला का मर्म